

❖ ओ३म् ❖

## आर्ष-ज्योतिः

# श्रीमद्दयानन्द वेदार्ष-महाविद्यालय-न्यास

का  
द्विभाषीय मासिक मुखपत्र

श्रावण-भाद्रपद, विक्रम संवत् - २०७३

वर्ष : ८

अंक : ९९

अगस्त : २०१६

मूल्य : ५.०० रुपये

ज्योतिष्कृणोति सूनरी  
संरक्षक - संस्थापक  
स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती

❖

परामर्शदाता  
डॉ. रघुवीर वेदालङ्कार

❖

मुख्य सम्पादक  
डॉ. धनञ्जय आर्य (अवैतनिक)

❖

सम्पादक  
चन्द्रभूषण आर्य  
डॉ. रवीन्द्र आर्य

❖

कार्यकारी सम्पादक  
ब्र. शिवदेव आर्य

❖

व्यवस्थापक  
ब्र. अनुदीप आर्य  
ब्र. कैलाश आर्य

❖

कार्यालय

श्रीमद्दयानन्द आर्ष ज्योतिर्मठ गुरुकुल  
दून वाटिका-२, पौधा, देहरादून (उत्तराखण्ड)  
जंगमवाणी - ९४१११०६१०४, ८८१०००५०९६  
ई-मेल : arsh.jyoti@yahoo.in

website: www.pranawanand.org

सदस्यता शुल्क

आजीवन - १०००.०० रुपये  
वार्षिक - ५०.०० रुपये/ एक प्रति - ५ रुपये

## विषय-क्रमणिका

विषयः

पृष्ठः

सम्पादकीय	२
राजार्यसभा की अपरिहार्यता... ?	४
ऋषि दयानन्द प्रणीत सत्यार्थप्रकाश क्यों पढ़ें ?	७
पञ्चमहायज्ञ	१०
अथर्ववेद के आलोक में आयुर्वेद विमर्श	१३
स्वतन्त्रता दिवस व देश प्रेम	१८
संस्कृत नाटकों में भौगोलिक...	२०
प्रयागप्रशस्ते: सारः	२२

नीमीतीरे सततसुखदे सर्वतो दर्शनीयम्,  
पौन्ध्राग्रामे नगरनिनदाद् दूरमीक्ष्यं मनुष्यैः।  
हैमे तुङ्गे शिखरिशिखरे शोभनोपत्यकायाम्,  
आर्षज्योतिर्मठगुरुकुलं राजते संसृतौ मे।। रवीन्द्रकुमारः

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं हैं।

न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः

## सम्पादक की कलम से...



### वेदस्रोत से मानवीयमूल्य

सुख शान्तिमय जीवन यात्रा तथा परमानन्द के लिए परमपिता परमेश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में वेदज्ञान की ज्योति प्रदान की, जिसके आलोक में जीवन श्रेय एवं प्रेयमार्ग पर सुचारूतया संचारित होता है। वेद प्रतिपादित जीवनपद्धति ही नैतिकता का सर्वोच्च आदर्श है। इन उच्चतम जीवनमूल्यों का वैदिक वाङ्मय एवं परवर्ती भारतीय साहित्य में मनीषियों एवं कवियों द्वारा अनेक आख्यानों उपाख्यानों द्वारा चारु चित्रण किया गया है। आपस्तम्ब, बौधायन तथा गौतम आदि धर्मसूत्रकारों द्वारा चारों वर्णों एवं आश्रमियों के कर्तव्यों का विधिवत् उल्लेख किया गया है। मनु महाराज, याज्ञवल्क्य, पाराशर आदि स्मृतिकारों ने श्रुतिवाक्यों का अनुसरण कर पुनः हमें उनका स्मरण कराया। महामना विदुर, आचार्य चाणक्य, महाराज भर्तृहरि आदि मनीषियों ने अपने विधिनीतिवचनों से सुख-शान्ति तथा समृद्धि के प्रशस्त मार्ग पर चलने के लिए पुनः प्रेरित किया, किन्तु अविवेकग्रस्त आधुनिक मानवजाति को श्रुतिस्मृति के विधिनीतिवचन मूर्खतापूर्ण एवं हास्यस्पद प्रतीत होते हैं।

सूख का मूल धर्म है, इसके स्थान पर सुख एवं समृद्धि का आधार अधर्म एवं अनीति प्रतीत होते हैं। धर्मविरुद्ध आचरण या अनैतिकता से भले ही कोई व्यक्ति करोड़पति या अरबपति बन जाये, किसी की सम्पत्ति का

अपरहण कर ले, बलात् किसी का उपभोग कर लें किन्तु इससे उसे सुख-शान्ति तथा वैभव की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

सुख या रसानुभूति का आधार हमारा अन्तःकरण है। मन, बुद्धि आदि का विषय के साथ तद्रूपता या तन्मयता ही सर्वविध सुखों का मूलाधार है। दार्शनिक दृष्टि से कहें तो मन की एकाग्रता ही सांसारिक सुखानुभूतियों का एकमात्र कारण है। जब हम किसी सुन्दररूप का दर्शन, मधुर संगीत का श्रवण अथवा सुमधुर रस का आस्वादन कर रहे होते हैं तब इन विषयों के माध्यम से हमारे मन, बुद्धि आदि अन्तःकरण तदाकार हो चित्तवृत्तियों की शान्तता से सुखानुभव कराते हैं। अपरतः कोई भी मनुष्य आत्मा के गुण, धर्म एवं स्वभाव के विरुद्ध अधर्म, पापाचरण या अनैतिककर्म करता है तो उसके मन में स्वाभाविक भय, लज्जा, संकोच आदि का भाव उत्पन्न हो जाता है।

वेद न केवल प्राचीनतम ग्रन्थ हैं अपितु सब सत्यविद्याओं का आदि स्रोत है। मनुष्य तथा देश के निर्माण की संकल्पना को व्यवहारिक रूप से प्रतिपादन करने में जितना वैदिक साहित्य का स्थान महत्त्वपूर्ण है उतना संसार के किसी भी साहित्य का नहीं है। जीवन के उदात्त मानवीयमूल्यों की अभिव्यक्ति वैदिक साहित्य में पग-पग पर दृष्टिगोचर होती है। इसीलिए हमें वैदिक साहित्य का स्वाध्याय करना चाहिए।

वेद का ज्ञान समस्त मानव तथा प्राणियों के हित को द्योतित करते हुए आदेश देता है कि मनुष्य को अपने कर्तव्य पालन करने में सदैव उद्यत रहना चाहिए। यह कर्तव्य व्यक्तिगत भी है और समष्टिगत भी। मनुष्य का सोचना, समझना और एक निष्कर्ष तक पहुँचना, उसके कर्तव्य का हिस्सा ही है। यह कर्तव्य दिव्यमन से शुचितापूर्ण हो, सामुदायिक हो तो निश्चय ही सर्वहितकारी कार्य बिना किसी समस्या के पूर्ण हो सकते हैं। मनुष्य की सोच-समझकर निर्णय लेने की नीति समाज में संगठन

को जन्म देती है। अथर्ववेद में कहा गया है कि **सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा। मा युष्महि मनसा दैव्येन।।** (अथर्व.-७/५२/२) अर्थात् हम मन से उत्तम ज्ञान प्राप्त करें, ज्ञान प्राप्त करके एक मत से रहें तथा परस्पर विरोध न करते हुए दिव्य मन से युक्त हों।

वैदिक मान्यता के अनुसार सामाजिक संगठन में इकट्ठे होने की भावना होनी चाहिए, साथ ही एक मन और वाणी से परमात्मा की उपासना करने का भाव भी होना चाहिए, क्योंकि सामुदायिक उपासना में सब मनुष्य एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। जैसा कि **समेत विश्वे वचसा पतिं दिव दिव एको विभूरतिथिर्जनानाम्। स पूर्वो नूतनमाविवासत् तं वर्तनिरनु तं वर्तनिरनु वावृतएकमित्युरु।।** (अथर्व.-७/२१/१) यह मन्त्र कहता है - परमात्मा दिव्य है, सर्वव्यापक है, पुराने और नये सबमें व्याप्त है। उसके प्रति सब इकट्ठे होकर एक वाणी से उसके यशोगीत गाएँ।

मानवीय दृष्टिकोण को प्रतिपादित करते हुए वेदों में कहा है कि तुम बस एक दुसरे से प्रेमपूर्वक सत्य, प्रिय एवं हितकर भाषण करते हुए आगे बढ़ो, पृथक्-पृथक् मत होओ, परस्पर विरोध मत करो, सम्मिलित होकर रहो।

असत्य, अधर्म, अनीति के प्रति सबके अन्तःकरण में अश्रद्धा, भय लज्जा, संकोच आदि के भाव उत्पन्न होते हैं तथा सत्य, धर्म, नैतिकता के प्रति सबके अन्तःकरण में श्रद्धा आदि का भाव परमेश्वर ने स्वभावतः उत्पन्न किया है। अधर्म या अनैतिक आचरणजन्य इन अश्रद्धा भय आदि से हमारा मन अशान्त हो जाता है। ऐसी मनःस्थिति में सुखानुभव नहीं होता है अपितु नकारात्मकभावों से हमारा मनोमय शरीर सन्तापित होता है, जो कि विविध परीक्षणों से प्रमाणित हो चुका है।

विषमभाव अशान्ति और दुःख का प्रयोजक है तथा समभाव शान्ति और आनन्द का आविर्भावक है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव मनुष्यों को अपने लौकिक व्यवहारों

में भी होता रहता है। परमार्थ अर्थात् कल्याणमार्ग में तो इसका (विषमभाव) त्याग अनिवार्य है। अतः विषम भाव का त्याग विष के समान करके अमृत के समान समभाव को धारण करने के लिए सब मनुष्यों का संकल्प, निश्चय तथा व्यवहार समभाव वाला होना चाहिए, सब मानवों के विचार समान हों, जिससे प्रत्येक का कल्याण होगा। इसी प्रकार हमारा अन्तःकरण होवे। यह समता की भावना ही संगठन को दृढ़ बनाती है, समता की भावना मनुष्यमात्र में ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र में होनी चाहिए।

जीवन में सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रकाश की आवश्यकता होती है। अतः वेदों में अनेकत्र अग्निस्वरूप परमेश्वर से सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने की प्रार्थना करते हुए एक मन्त्र में कहा गया है **अग्ने नय सुपथा राये** इस मन्त्र में सर्वप्रकाशक परमात्मा से बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करने की अभ्यर्थना करते हैं। वैदिक जीवनपद्धति में उपासना एवं यज्ञ को जीवन का अभिन्न अंग माना गया है। उपासना एवं यज्ञों के द्वारा आत्माग्नि को परमप्रकाशस्वरूप परमात्मा के समीप पहुँचा जा सकता है। जहाँ प्रकाश ही प्रकाश है, ज्ञान का दिव्य आलोक परमज्योति है, जिसके प्रकाश से जीवन में कोई भी अनैतिक कार्य व पापाचार नहीं हो सकता। ऐसे भाव मनुष्य के अन्तःकरण में जब निहित होंगे तब लोभ, मोह, काम, क्रोध, द्वेष, हिंसा आदि आसुरीय प्रवृत्तियाँ स्वतः ही समाप्त हो जायेंगी।

इसलिए हमें वेद के स्रोत से आत्मप्रकाश के स्रोत का उदयन करना चाहिए। यही हम सबका परम मार्ग व उद्देश्य है।

आओ! वेद के स्रोत से अभ्युदयपथ के पथानुगामी होंगे.....

**शिवदेव आर्य**

गुरुकुल पौन्धा, देहरादून

मौ.-८८१००५०९६

## राजार्यसभा की अपरिहार्यता.... ?

□ आचार्य यज्ञवीर...

भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में आर्यसमाज के योगदान के विषय में अनेक ऐतिह्यविदों का स्पष्ट मत सर्वविदित है कि आजादी की लड़ाई में ८० प्रतिशत आर्यसमाजी संघर्षरत रहे। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती के विचारों से प्रभावित अनेक युवक इंग्लैण्ड में पढ़ते हुए भी स्वतन्त्रता के लिए निरन्तर कार्य करते रहे हैं स्वामी जी के पत्र श्याम जी कृष्ण वर्मा के नाम इस बात को प्रमाणित करते हैं। स्वामी जी के जीवन चरित्र में अनेक घटनाएँ सूचित करती हैं कि स्वामी जी स्वराज्य के कितने प्रबल समर्थक थे। एक बार अंग्रेज अधिकारी ने स्वामी जी से कहा कि आपको हमारे शासन में कोई कष्ट तो नहीं ? पूछने पर स्वामी जी ने कहा सब ठीक प्रकार से है मुझे कोई समस्या नहीं तब अधिकारी ने कहा कि फिर तो आप ईश्वर से हमारे राज्य के लिए प्रार्थना किया करें। इस पर स्वामी ने गर्जते हुए कहा कि यह विदेशियों का राज्य शीघ्र समाप्त हो। वैसे भी अब आपके जाने के दिन आ गये क्योंकि पहले जब मैं घूमने आता था तो आप भी भ्रमण करते मिलते थे और अब मैं भ्रमण करके जब वापिस जाता हूँ तब आप भ्रमण के लिए आते मिलते हैं। आलसियों का राज्य ज्यादा दिन नहीं टिका करता।

अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी ने स्पष्ट घोषणा कि है 'कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपातशून्य प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्णसुखदायक नहीं है।

इन विचारों को पढ़ने वाले आर्यसमाजी स्वतन्त्रता संग्राम में पूर्ण उत्साह से जुटे रहे और अंग्रेजों के कोपभाजन बनते रहे। साथ-साथ अंग्रेजों के समर्थक भी आर्य समाज में फूट के बीज बोने में लगे और आर्यसमाज में घुस गये। तथा आर्यजनों को राजनीति से दूर रहने का उपदेश करते रहे। मेरे मत में शायद आर्यसमाजियों की यही सबसे बड़ी भूल रही कि आजादी प्राप्त कर दूसरों को सौंप दी और स्वयं तटस्थ

होकर बैठ गये फिर अनेक राजनीति पार्टियों के साथ सम्बन्ध होने से आर्यसमाज में ही आज तीन चार गुट बन कर राजनीति की जा रही है। आर्यों! सावधान जरा सोचिए! और सत्यार्थप्रकाश के छोटे समुल्लास पर विशेष क्रियात्मक ध्यान दीजिए। नया राजनीतिक विहान खोजिए।..... ?

स्वामी जी के जीवनचरित्र के अनुसार हम देखें तो वे कहते हैं 'यथा राजा तथा प्रजा अतः आर्य राजाओं में सुधार करने के लिए राजस्थान में आर्यसमाज का कार्य विशेष रूप से करने लगे थे। इसलिए हमें आज राजनीति में सक्रिय भागीदारी का निर्वहण करना है तो सत्यार्थप्रकाश के छोटे समुल्लास का अध्ययन और क्रियान्वयन करना पड़ेगा।

स्वामी जी ने वेदों के प्रमाण प्रस्तुत करके सभाओं के निर्माण को दिशा-निर्देश किया है -**त्रीणि राजाना विदधे पुरुणि परि विश्वानि भूषथ सदांसि**<sup>१</sup>

अर्थात् ईश्वर उपदेश करता है कि (राजाना) राजा और प्रजा के पुरुष मिलके (विदधे) सुख प्राप्ति और विज्ञानवृद्धिकारक राजा प्रजा के सम्बन्ध रूप व्यवहार में (त्रीणि सदांसि) तीन सभा अर्थात् विद्यार्यसभा, धर्मार्यसभा, राजार्यसभा नियत करके (पुरुणि) बहुत प्रकार के (विश्वानि) समग्र प्रजासम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को (परिभूषथ) सब ओर से विद्या स्वातन्त्र्य धर्म सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें। अथर्ववेद में भी कहा गया है-

**तं सभा च समितिश्च सेना च**<sup>२</sup>

**सभ्यः सभां मे पहि ये च सम्याः समासदः**<sup>३</sup>

इन मन्त्रों का अर्थ प्रस्तुत करते हुए स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं- (तं) उस राजधर्म को (सभा च) तीनों सभा (समितिश्च) संग्रामादि की व्यवस्था और (सेना च) सेना मिलकर पालन करें।<sup>४</sup>

दूसरे मन्त्र का अर्थ प्रतिपादित करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि सभासद् और राजा को योग्य है कि राजा सब सभासदों को आज्ञा देवे कि हे (सभ्य) सभा के योग्य मुख्य सभासद तू (मे) मेरी (सभाम्) सभा की

धर्मयुक्तव्यवस्था का (पाहि) पालन कर और (ये च) जो (सभ्याः) सभा के योग्य (समासदः) सभासद् हैं वे भी सभा की व्यवस्था का पालन किया करें।<sup>६</sup>

इन मन्त्रों के अर्थ से स्वामी का अभिप्राय स्पष्ट झलकता है कि केवल अकेले राजा को स्वतन्त्र रूप से राज्य का पूर्ण अधिकार प्रदान नहीं करना चाहिए किन्तु राजा को सभापति तदधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के अधीन रहे। इस प्रकार पूर्ण रूप से अधिकार एक के आधीन न करके एक दूसरे के अधीन कर दिया है। इस से स्वेच्छा चारिता को लगाम लग जायेगी। यदि इस प्रकार की व्यवस्था लागू न की गयी तो इसका दुष्परिणाम यह होगा कि राजा स्वेच्छाचारी होकर प्रजा का घातक बन जायेगा तब तो रक्षक ही भक्षक बन जायेगा और एक अन्य प्रकार की अनर्थ परम्परा ही प्रचलित हो जायेगी। अन्यत्र भी कहा भी है- 'राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद् राष्ट्री विशं घातुकः। विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति तस्माद् राष्ट्री विशमति न पुष्टं पशु मन्यत इति।'<sup>७</sup>

अर्थात् जो राजवर्ग प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन रहता है, वह तो राज्य में प्रविष्ट होकर प्रजा का विनाश ही किया करता है और जिस लिए एकाकी राजा स्वाधीन एवं उन्मत्त होकर प्रजा का विनाशकारी ही होता है। कहने का तात्पर्य है कि वह उच्छृंखल उत्पीडित करता है। इसलिए किसी एक को राज्य में स्वाधीन नहीं करना चाहिए। जिसप्रकार सिंह आदि हिंसक मांसाहारी किसी भी हृष्ट पुष्ट पशु को मारकर खा जाते हैं उसी प्रकार स्वतन्त्र राजा भी प्रजा का विनाश करता है, वह किसी को भी अपने से अधिक नहीं होने देता है। धनवानों को लूटकर अन्याय पूर्वक कर लेकर व दण्ड देकर निज स्वार्थ को पूरा करता रहता है। अतः पूर्व लिखित मन्त्र के अनुसार राजा पर सभा और सभापति का नियन्त्रण होना चाहिए, एतद् विषयक अन्य मन्त्र भी प्रस्तुत किया है - 'इन्द्रो जयाति न पराजयाता अधिराजो राजसु राजयाहैचर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्योऽभवेह।'<sup>८</sup>

इस मन्त्र के अर्थ से और अधिक स्पष्ट हो रहा है कि - हे मनुष्यों! जो इस मानव समूह के अन्दर परमैश्वर्य का करने हारा शत्रुओं को पराजित कर सके। जो राजाओं में

अधिराज अर्थात् सर्वोपरि विराजमान हो प्रकाशमान हो अर्थात् चक्रवर्ती राजा हो वह सभापति राजा नियुक्त करे, उस में निम्नलिखित सद्गुण अवश्य हो जो सभापति होने के लिए अत्यन्त योग्य हो प्रशंसनीय गुणकर्म स्वभाव युक्त हो, सत्कार करने योग्य हो, समीप जाने योग्य और शरण लेने योग्य हो, सबका माननीय नमन करने योग्य हो, उसी को सभापति राजा बनायें।

एक अन्य वेद मन्त्र द्वारा सभापति राजा के गुणों का वर्णन करते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं - 'इमं देवाऽअसपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय।'<sup>९</sup>

हे (देवाः) विद्वानों प्रजा जनों तुम (इमम्) इस प्रकार के पुरुष को (महते क्षत्राय) बड़े चक्रवर्तिराज्य (महते ज्यैष्ठ्याय) सबसे बड़े होने (महते जानराज्याय) बड़े-बड़े विद्वानों से युक्त राज्य पालने और (इन्द्रस्येन्द्रियाय) परमैश्वर्ययुक्त राज्य और धन पालन के लिए (असपत्नं सुवध्वम्) सम्मति करके सर्वत्र पक्षपात रहित पूर्ण विद्या विनय युक्त सब के मित्र सभापति राजा को सर्वाधीश मान के सब भूगोल शत्रुरहित करो।<sup>१०</sup>

पूर्व मन्त्रों में सेना का वर्णन आ चुका है वह सेना कैसी हो इस विषय का अन्य मन्त्र प्रस्तुत किया है-

'स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीक् उत प्रतिष्कभे। युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः।।'<sup>११</sup>

इस मन्त्र का अर्थ करते हुए स्वामी जी लिखते हैं - 'ईश्वर उपदेश करता है - हे राजपुरुषों (वः) तुम्हारे (आयुधा) अग्नेयादि अस्त्र और शतधनी (तोप) भुशुण्डी (बन्दूक) धनुषबाण करवाल (तलवार) आदि शस्त्र शत्रुओं के (पराणुदे) पराजय करने (उत प्रतिष्कभे) और रोकने के लिए (वीक्) प्रशंसित और (स्थिरा) दृढ़ (सन्तु) हो (युष्माकम्) और तुम्हारी (तविषी) सेना (पनीयसी) प्रशंसनीय (अस्तु) होवें कि जिससे तुम सदा विजयी होओ परन्तु (मा मर्त्यस्य मायिनः) जो निन्दित अन्याय रूप काम करता है उसके लिए पूर्वोक्त चीजें न हों अर्थात् जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और जब दुष्टाचारी होते हैं तब नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।'<sup>१२</sup>

अब स्वामी जी आगे कहते हैं कि पूर्व में कथित तीन सभाओं का निर्माण करते समय किन बातों का ध्यान रखा जाए किस प्रकार के गुणों से सम्पन्न विद्वज्जन किस सभा के लिए उपयुक्त रहेंगे इस पर अपना मन्तव्य प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं -

‘महाविद्वानों को विद्यासभाधिकारी, धार्मिक विद्वानों को धर्मसभाधिकारी, प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राजसभाधिकारी सभासद् और उन सब में सर्वोत्तम गुण-कर्म-स्वभाव युक्त महान् पुरुष हो उसको राजसभा का पतिरूप (स्वामी) मानकर सब प्रकार से उन्नति करें। तीनों सभाओं की सम्मति से राजनीति के उत्तम नियम और नियमों के आधीन सब लोग बर्ते सबके हितकारी कामों में सम्मति करें। सर्वहित करने के लिए परतन्त्र और धर्म युक्त कामों में जो-जो निज के काम हैं उन-उन में स्वतन्त्र रहें।’<sup>१३</sup>

इस स्वामी जी के मन्तव्य को पढ़ने के बाद हम देख रहे हैं कि स्वामी जी प्रत्येक सभा अधिकारी सभासद् सभापति के धार्मिक होने की आवश्यकता पर जोर दे रहे हैं तो फिर आर्यो! आप क्यों यह मत बना बैठे कि आर्य समाज एक धार्मिक सामाजिक संगठन है, उसे राजनीति से कोई लेना-देना नहीं क्यों आप अपने ही संस्थापक के विचारों से सहमत नहीं? क्या आप धार्मिकों का अधिकार राज्य पर नहीं मानते? क्या आप आर्यो! ‘**वयं स्याम पतयो रयीणाम्**’<sup>१४</sup> को वेद का आदेश उपदेश स्वीकार नहीं करते? क्या वास्तव में आप दरिद्र रहना चाहते हो? आप क्या चाणक्य के अर्थशास्त्र को स्वीकार नहीं करते? क्या आप पुरुषार्थचतुष्टय को नहीं मानते? इस पुरुषार्थ चतुष्टय में द्वितीय पर राजर्षि चाणक्य ने अर्थशास्त्र का श्रीगणेश करते हुए प्रश्न किया है - ये चाणक्य सूत्राणि नाम से अर्थशास्त्र के परिशिष्ट में संकलित हैं उनमें प्रथम प्रश्न किया कि प्रत्येक प्राणी सुख की कामना करता है उसका मूल क्या है - ‘सुखस्य मूलं धर्मः’<sup>१५</sup> अर्थात् सुख का मूल धर्म है। अब आगे प्रश्न समुपस्थित है कि उस धर्म का मूल क्या है? इसके उत्तर में द्वितीय सूत्र उपलब्ध है - ‘**धर्मस्य मूलमर्थः**’<sup>१६</sup> अर्थात् धर्म का मूल अर्थ होगा तभी वह दान करके यज्ञादि से कूप तडाग, बावडी धर्मशाला रुग्णालय गोशाला पाठशाला आदि का निर्माण करा सकता

है। जिसके घर में मूषकों को उपवास करना पड़े वह दरिद्र क्या धर्म कार्य कर सकेगा? वह अर्थ कहाँ से मिले, उसका मूल क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य चाणक्य उत्तर देते हैं कि ‘**अर्थस्य मूलं राज्यम्**’<sup>१७</sup> अर्थात् अर्थ का मूल राज्य है और अब राज्य का मूल क्या है? इसका उत्तर देते हुए नीतिकार चाणक्य लिखता है ‘**राज्यस्य मूलमिन्द्रियजयः**’<sup>१८</sup> अर्थात् राज्य का मूल है इन्द्रियों को जीतना। इसका समर्थन करते हुए महर्षि मनु भी लिखते हैं-

‘**जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः**’<sup>१९</sup>

अर्थात् जितेन्द्रिय राजा ही प्रजा पर शासन कर सकता है। इस प्रकार इन सभी सूत्रों से यह सिद्ध होता है कि आर्य (श्रेष्ठ) व्यक्तियों को राज्य में भागीदार अवश्य होना चाहिए।

अतः आर्य (श्रेष्ठ व्यक्तियों) के सभा को भी राज्य संचालन हेतु राजार्यसभा का गठन अवश्य ही करना अपरिहार्य है। चाहे वर्तमान में उसका नाम सर्वसम्मति से अन्य भी रखा जा सकता है। अलमतिविस्तरेण विद्वद्वयेषु...

**सन्दर्भ-सूची:-**

१. सत्यार्थ प्रकाश, अष्टम समुल्लास, पृ.-१५३
२. ऋग्वेद-३/३८/६
३. अथर्ववेद, काण्ड-१५, अनु.-२, म.-२
४. अथर्ववेद, काण्ड-१९, अनु.-७, म.-६
५. सत्यार्थ प्रकाश, छटा समुल्लास, पृ.-९१
६. सत्यार्थ प्रकाश, छटा समुल्लास, पृ.-९१
७. शतपथ का.-१३, अनु.-२, ब्रा.-३
८. अथर्व., का.-६, अनु.-१०, व ९८, म.-१
९. यजुर्वेद-९/४०
१०. सत्यार्थ प्रकाश, छटा समुल्लास, पृ.-९२
११. ऋग्वेद-१/३९/२
१२. सत्यार्थ प्रकाश, छटा समुल्लास, पृ.-९२
१३. सत्यार्थ प्रकाश, छटा समुल्लास, पृ.-९२
१४. यजुर्वेद-३२/६
१५. चाणक्यसूत्राणि प्रथम (अर्थशास्त्र)
१६. चाणक्यसूत्राणि द्वितीय (अर्थशास्त्र)
१७. चाणक्यसूत्राणि तृतीय (अर्थशास्त्र)
१८. चाणक्यसूत्राणि चतुर्थ (अर्थशास्त्र)
१९. मनुस्मृति-७/२१

-गुरुकुल पौन्धा, देहरादून

## ऋषि दयानन्द प्रणीत सत्यार्थप्रकाश क्यों पढ़ें?

□ मनमोहन कुमार आर्य...✍

संसार में पुस्तकों व ग्रन्थों की बात करें तो इनकी संख्या अगणित कही जा सकती हैं। यदि कोई मनुष्य चाहे तो वह संसार की सभी पुस्तकें नहीं पढ़ सकता। यदि वह पढ़ सकता तो भी अनेक पुस्तकों का जीवन में कोई महत्व नहीं होता। कुछ व अधिकांश पुस्तकें तो समय व्यतीत करने के लिए ही लिखी व प्रकाशित की जाती हैं। कुछ ग्रन्थ ऐसे होते हैं, जिनसे मनुष्य को निजी लाभ होता है। इन्हें हम शिक्षा की पुस्तकें कह सकते हैं। जो व्यक्ति जिन माता-पिता से उत्पन्न होता है उसे अपनी मातृभाषा का अध्ययन अवश्य करना चाहिये। उसके बाद वह अन्य महत्वपूर्ण कुछ अन्य भाषाओं का अध्ययन भी कर सकता है। भाषाओं का अध्ययन स्वयं को असभ्य व असंस्कृतज्ञ से संस्कृतज्ञ व चरित्रवान् सहित सच्चा धार्मिक मनुष्य बनाने के लिए किया जाता है। भाषा का ज्ञान होने पर मनुष्य उस भाषा में उपलब्ध अच्छे व श्रेष्ठ ग्रन्थों को पढ़ कर संस्कारित हो सकता है। हम भी हिन्दी माता-पिता से उत्पन्न हुए और हमने इस भाषा का सामान्य अध्ययन किया। व्यवसाय हेतु कुछ अंग्रेजी भी पढ़ी। १८ वर्ष की अवस्था होने पर हम आर्यसमाज के सम्पर्क में आये। अन्य सभी हिन्दू धार्मिक संस्थाओं का भी परिचय प्राप्त किया और कुछ से सम्पर्क भी हुआ। उनके विचार व मान्यताओं को भी जाना। इसके साथ आर्यसमाज में प्रत्येक रविवार को भजन व विद्वानों के उपदेश तो सुनते ही थे और सत्यार्थप्रकाश का पाठ भी सुनते थे। सत्यार्थप्रकाश की बातें और उनकी व्याख्यायें सुनकर मन पर विशेष प्रभाव पड़ता था। अति कम मूल्य में मिलने वाला ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश भी हमने क्रय कर लिया। इससे पूर्व भी हमारे पिता का सत्यार्थप्रकाश घर पर था परन्तु उसके आरम्भ के कुछ पृष्ठ न होने के कारण हमें उसका नाम पता

न चल सका था। इस प्रकार से सत्यार्थप्रकाश प्राप्त कर हमने सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन आरम्भ किया। सत्यार्थप्रकाश ऋषि दयानन्द की अमर व सर्वोच्च श्रेष्ठ कृति है जिससे मनुष्य को संसार के अनेक रहस्यों, धर्म व अधर्म सहित श्रेष्ठ जीवन व व्यवहार आदि के बारे में यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। जैसे-जैसे हम इस ग्रन्थ को पढ़ते गये, हमें इस ग्रन्थ में वर्णित अनेकानेक विषयों का ज्ञान होता गया जो इसे न पढ़ने वालों को हजार जन्म लेने पर भी नहीं हो सकता, ऐसा हम अनुभव करते हैं। यही इस ग्रन्थ की विशेषता है। यह ग्रन्थ इतना महत्वपूर्ण है कि संसार के सभी मनुष्यों को एक नहीं अपितु अनेक बार इसका अवश्य अध्ययन करना चाहिये। राग-द्वेष से रहित होकर अध्ययन करने से पाठक को लाभ अवश्य होगा। हमारे सामने अनेक उदाहरण हैं जिसके अनुसार **जिस किसी ने भी इस ग्रन्थ को निष्पक्ष भाव से पढ़ा वह अपने पूर्व मत को छोड़ कर वैदिक मत व धर्म का अनुयायी हो गया।** ऐसे ही एक पौराणिक विद्वान् संन्यासी स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती जी थे जिन्होंने अपने एक आर्यसमाजी भक्त की सेवा से प्रसन्न होकर उसकी इच्छा व भावना को सम्मान देते हुए सत्यार्थप्रकाश को पढ़ा और अपना शेष जीवन एक वैदिक विद्वान् और आर्य संन्यासी के रूप में व्यतीत किया। आज आर्यसमाज के प्रमुख स्तम्भों में उनकी गणना होती है। ऐसे और भी अनेक उदाहरण हैं।

सत्यार्थप्रकाश क्या है? इस प्रश्न के उत्तर से पूर्व इसकी भूमिका पर ध्यान देना आवश्यक प्रतीत होता है। हम जानते हैं कि संसार को बने हुए लाखों व उससे भी अधिक वर्ष व्यतीत हो गये हैं। वैदिक मान्यताओं के अनुसार सृष्टि में मनुष्यों की उत्पत्ति के समय से आरम्भ सृष्टिसंवत् के अनुसार १ अरब ९६ करोड़ ८ लाख ५३ हजार ११६

आर्ष-ज्योतिः-(श्रावण-भाद्रपद-२०७३/अगस्त-२०१६)

7

वर्ष पूर्ण होकर अब ११७ वां वर्ष इस समय चल रहा है। आज से लगभग पांच हजार वर्ष से कुछ अधिक वर्ष पूर्व महाभारत का प्रसिद्ध युद्ध कुरुक्षेत्र में हुआ था। सृष्टि के आरम्भ से महाभारत काल तक के १.१६ अरब वर्षों तक पूरी पृथिवी और इसके सभी देशों में वेद मत ही प्रचलित था। आज संसार में जितने मत प्रचलित हैं इनमें से महाभारत काल तक किसी मत का आविर्भाव इस कारण नहीं हुआ था कि वेद मत ही पूर्ण सत्यधर्म है जिसकी सभी मान्यतायें व सिद्धान्त ज्ञान व विज्ञान पर आधारित हैं। महाभारत युद्ध में अपूर्व विनाश होने से देश की शिक्षा, धर्म व राजनीति आदि सभी व्यवस्थायें कुप्रभावित हुईं जिस कारण देश और संसार में अज्ञान फैल गया। इस अज्ञानता के कारण वैदिक धर्म अपने शुद्ध रूप में न रह सका अपितु इसका स्थान अनेक अवैदिक मान्यताओं ने ले लिया। पूर्णतया अंहिसात्मक यज्ञों में पशुओं के मांस से आहुतियां दी जाने लगी। गुण, कर्म व स्वभाव पर आधारित वर्ण व्यवस्था समाप्त होकर उसका स्थान जन्मना जातिवाद ने ले लिया। इस जातिवाद ने ऊंच-नीच और छुआ-छूत जैसी सामाजिक बुराईयों को जन्म देने के साथ स्त्रियों व शूद्रों के वेदाध्ययन आदि के अधिकार भी छीन लिये। यह लोग एक प्रकार से तत्कालीन ब्राह्मण वर्ग के गुलाम से बन गये जिससे समाज रसातल की ओर जाता रहा। भारत की इस दीन-हीन दशा में ही यहां बौद्ध और जैन जैसे वाममार्गी मतों की स्थापना हुई और विदेशों में पारसी, ईसाई व इस्लाम मत की स्थापना हुई। इसके बाद भी मतों की उत्पत्ति का क्रम थमा नहीं, नये-नये अनेक मत उत्पन्न होते रहे और इनकी संख्या व अनुयायियों में वृद्धि होती रही। देश व विदेश का समाज अनेक जातियों, समूहों व वर्गों में बंट गया जिनमें आपस में मनमुटाव, परस्पर वैरभाव व झगड़े होने लगे। भारत की बात करें तो यहां बौद्ध व जैन मत की स्थापना के साथ कुछ आगे व पीछे पौराणिक मत का भी प्रचलन हुआ। इनके तीन मुख्य सम्प्रदाय थे शैव, वैष्णव और शाक्त। शिव के पुजारी शैव, वैष्णव विष्णु के तथा शाक्त देवी के पुजारी

थे। इन्होंने वेदों को छोड़कर अपने नये ग्रन्थों शिव पुराण, विष्णु वा भागवत पुराण और देवी भागवत आदि ग्रन्थों को वेदों पर वरीयता दी और आज भी ऐसा ही चल रहा है। परिणाम यह हुआ कि सुशिक्षा समाप्त होने से समाज कमजोर हुआ और देश गुलाम हो गया। ऐसे समय में महर्षि दयानन्द सरस्वती का देश में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विश्व पटल पर पदार्पण होता है।

महर्षि दयानन्द अपने पूर्वजों की परम्परानुसार बाल्यकाल में शैवमत को मानने वाले थे। शिवरात्रि के दिन शिवलिंग पर चूहों की उछल-कूद देख कर मूर्तिपूजा पर इनका विश्वास समाप्त हो गया था। इसके कुछ समय बाद घर में एक बहिन और चाचा की मृत्यु से इन्हें तीव्र वैराग्य हो गया। माता-पिता ने विवाह करना चाहा तो यह सत्य और ईश्वर की खोज और अनेक प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए घर से भाग निकले। लगभग १७ वर्षों तक आपने देश भर में घूम कर अनेक विद्वानों व योग गुरुओं से विद्याध्ययन सहित योगाभ्यास सीखा। मथुरा के गुरु विरजानन्द जी का लगभग तीन वर्षों का सान्निध्य प्राप्त कर आप विद्या से पूर्ण तृप्त हुए और आपके सभी प्रश्नों व शंकाओं का समाधान भी हो गया। देश में सर्वत्र अविद्या व अन्धविश्वासों के कारण गुरु जी ने आपको वेद-विद्या का प्रचार करने और अज्ञान, अन्धविश्वास व असत्य मान्यताओं का खण्डन करने की प्रेरणा की। उनकी प्रेरणा से ही आप सन् १८६३ में कार्य क्षेत्र में उतरे और अज्ञान व अविद्या से पूर्णतया मुक्त वैदिक धर्म का प्रचार व प्रसार किया। ऐसा करते हुए आपने मुरादाबाद निवासी व वाराणसी के राजा जयकृष्ण दास की प्रेरणा पर सत्यार्थप्रकाश की रचना की जिसका प्रथम संस्करण सन् १८७५ में प्रकाशित हुआ था और इसके बाद इसका नया संशोधित और परिवर्धित संस्करण सन् १८८३ में तैयार होकर उनकी मृत्यु के बाद सन् १८८४ में प्रकाशित हुआ।

इस भूमिका के साथ सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ महर्षि दयानन्द की धर्म व अधर्म, सत्य व असत्य, मत व मतान्तर



तथा देश, सृष्टि व समाज विषयक सत्य व वेदानुकूल मान्यताओं वाला उनके प्रायः सम्पूर्ण ज्ञान का लिखित मुख्य प्रतिनिधि ग्रन्थ है। सत्यार्थ प्रकाश को पढ़कर ईश्वर व जीवात्मा के सत्यस्वरूप का निर्भ्रान्त ज्ञान होता है जो कि अन्य किसी मत के ग्रन्थ को पढ़कर नहीं होता। सत्यार्थप्रकाश के अनुसार ईश्वर व जीवात्मा दोनों अनादि व नित्य, अजर व अमर चेतन तत्व हैं जो अत्यन्त सूक्ष्म होने सहित ज्ञान व क्रियाशीलता के गुण से सम्पन्न हैं। प्रकृति एक तीसरा अनादि व सूक्ष्म पदार्थ, तत्व अथवा सत्ता है जो सत्व, रज व तम गुणों वाली है। इस जड़ प्रकृति के विकार को प्राप्त होने से ही यह सारा ब्रह्माण्ड ईश्वर द्वारा अपने ज्ञान व सामर्थ्य से बनाया गया है। सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने ईश्वर के अनन्त नामों में से १०८ नामों की व्याख्या की है। बच्चों के जन्म से लेकर उनकी शिक्षा, पठन-पाठन, गायत्री मन्त्र, प्राणायाम, सन्ध्या, यज्ञ, उपनयन, ब्रह्मचर्यपालन, पठनीय प्रमाणिक ग्रन्थों की जानकारी, स्त्री व शूद्रों का अध्ययन, विवाह व गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ व संन्यास आश्रम, राजधर्म, ईश्वर व वेद, सृष्टि उत्पत्ति सहित जन्म-मरण से मुक्ति, आचार व अनाचार, भक्ष्य व अभक्ष्य आदि अनेकानेक विषयों पर प्रकाश डाला है। इसके साथ देश में प्रवर्तित प्रायः सभी मत मतान्तरों सहित बौद्ध, जैन, ईसा व इस्लाम मत के सत्य व असत्य को सम्मुख रखकर सभी मनुष्यों के हित व सहायतार्थ इन मतों की मान्यताओं की समीक्षा भी की है। सत्यार्थप्रकाश के अन्त में ऋषि दयानन्द ने स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश के अन्तर्गत अपनी ५१ मान्यताओं का सविवरण प्रकाश किया है। सत्यार्थप्रकाश के प्रकाशन से अनेक विषयों का पहली बार ज्ञान देश व विश्व की जनता को हुआ। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से यह भी सिद्ध हुआ कि सभी मतों के ग्रन्थों में सत्य के साथ असत्य मान्यताओं की भरमार है। केवल पूर्ण शुद्ध एकमात्र

वेद मत व इसकी पुस्तकें हैं जिसका कारण वेदों का ईश्वर प्रदत्त होना है। मनुष्य के अल्पज्ञ होने से इनके द्वारा चलाया गया कोई मत पूर्ण सत्य सिद्धान्तों व मान्यताओं वाला तथा असत्य से पूर्णतया पृथक् कदापि नहीं हो सकता। मनुष्य में उठने वाले प्रायः सभी प्रश्नों के समाधान इस ग्रन्थ में मिल जाते हैं। यही कारण है कि विश्व की प्रायः सभी भाषाओं में इस ग्रन्थ के अनुवाद हुए और संसार में अनेक लोगों ने इसे पढ़ा है। सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ को पढ़ कर मनुष्य इसमें वर्णित विषयों का इतना विद्वान् व ज्ञानी बन जाता है जितना संसार की अन्य किसी पुस्तक को पढ़कर नहीं बन सकता, ऐसा हमारा अनुभव है। ईश्वर, जीवात्मा व सृष्टि के बारे में इस ग्रन्थ में सत्य ज्ञान होने के साथ सभी मनुष्यों को अन्यों के प्रति अपने कर्तव्यों का बोध होता है और साथ ही बार-बार आने वाले जन्म व मृत्यु से छूटने का तर्क व युक्ति सिद्ध उपाय भी इस ग्रन्थ में बताया गया है जो अन्य मतों में नहीं मिलता। इससे जीवन के उद्देश्य व लक्ष्य की जानकारी सहित उन्हें प्राप्त करने के उपायों व साधनों का ज्ञान भी होता है। अज्ञानता का निवारण और दुःख निवारण प्रायः परस्पर पूरक हैं। अतः सत्यार्थप्रकाश से अज्ञान का निवारण होकर संसार की तीन सत्ताओं ईश्वर, जीव और प्रकृति के सत्य अर्थों का प्रकाश व ज्ञान होता है। यह यथार्थ ज्ञान ही संसार में सर्वोत्तम प्राप्तव्य पदार्थ, धन व पूंजी हैं। अतः सत्यार्थप्रकाश धर्म व समाज विषय का संसार का अपूर्व, सर्वाधिक उपयोगी व महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इन कुछ विशेषताओं व ऐसी अन्य अनेकानेक और विशेषताओं के कारण हम समझते हैं कि संसार के प्रत्येक मनुष्य को इस ग्रन्थ को पढ़कर कर्तव्य बोध प्राप्त कर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग कर जीवन को सफल बनाना चाहिये। इसी के साथ लेख को विराम देते हैं।

-१९६ चुम्बूवाला-२

देहरादून-२४८००१

**हिन्दी भाषा ही भारत को एक सूत्र में पिरो सकती है।**

-महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्ष-ज्योतिः-(श्रावण-भाद्रपद-२०७३/अगस्त-२०१६)

9

## पञ्चमहायज्ञ

(स्वामी देवव्रत सरस्वती के कतिपय प्रवचनों का संग्रह)

□ संकलनकर्ता-आचार्य डॉ. धनञ्जय.....✍

क्रमशः.....

### देवयज्ञ

इसके अंतर्गत अग्निहोत्र, अमावस्या एवं पौर्णमासी को किये जाने वाले यज्ञ और भैषज्य यज्ञ अर्थात् ऋतु परिवर्तन या पकी फसल को घर में लाने के अवसर पर होने वाले यज्ञ आते हैं। इसी भांति राष्ट्र की वृद्धि के लिये अश्वमेधादि भी करने का विधान है।

यज्ञ शब्द यज् धातु से बना है जिसके देवपूजा, संगति करण, दान तीन अर्थ हैं। विद्वानों का सम्मान, पदार्थों के गुण, धर्म ज्ञान उन्हें मिलाकर कार्य सिद्ध करना एवं शुभ कार्यों में दान देना सभी यज्ञ के अंतर्गत आते हैं। सामान्य रूप में यज्ञ के पांच अर्थ किये जा सकते हैं-

१. परमात्मा का नाम यज्ञ है।

**तस्याद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे**

-यजु. अ. ३१

यज्ञमय पुरुष से चारों वेदों का प्रादुर्भाव हुआ।

**यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः (यजु.)** विद्वान् लोग यज्ञ के द्वारा उस यज्ञमय पुरुष (परमेश्वर) का यजन करते हैं।

परमात्मा स्वयं यज्ञस्वरूप है जिसने परमाणुओं की संगति कर सुन्दर सृष्टि की रचना की है और यज्ञचक्र को प्रवृत्त किया है तथा सभी को यज्ञ करने की आज्ञा दी है।

**सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।**

**अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्तु सर्वकामधुक्।।**

-गीता ३/१०

प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि के आदि में प्रजाओं को रचकर अपनी वेदवाणी के द्वारा कहा- तुम लोग इस यज्ञ द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित भोगों से प्राप्ति कराने वाले होवे।

तुम यज्ञ के द्वारा देवताओं को उन्नत करो और वे देवता तुम लोगों को उन्नत करें। सम्पूर्ण प्राणियों का पोषण अन्न से होता है। अन्न की उत्पत्ति वर्षा से होती है और यज्ञ से वृष्टि। इस प्रकार प्रजापति द्वारा प्रवर्तित यह यज्ञ चक्र अनवरत काल से प्रवर्तित हो रहा है।

२. परमात्मा द्वारा रचित यह संसार यज्ञ है जिसकी रचना में परमात्मा की अद्भुत प्रतिभा दृष्टिगत होती है। हमारा कर्तव्य है कि उसकी कृति को विकृत न करें। यज्ञ से पर्यावरण की शुद्धि एवं अपरिग्रह की भावना से सांसारिक वस्तुओं का उपभोग करें।

३. मानव शरीर (पुरुष) यज्ञ स्वरूप है। उपनिषद् में कहा है **पुरुषो वाव यज्ञः** (छान्दोग्य.) मानव जीवन यज्ञ है। जिसने २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया मानो उसने प्रातःकालीन सवन पूरा कर लिया। ४४ वर्ष का ब्रह्मचर्य माध्यन्दिन सवन और ४८ वर्ष का आदित्य ब्रह्मचर्य सांयकालीन सवन जानना चाहिये। वेद में **इयं ते यज्ञिया तनूः** (यजु.) कहकर इसकी पुष्टि की है।

४. संगठन का नाम यज्ञ है। यज् धातु का एक अर्थ संगतिकरण है। जैसे विभिन्न पदार्थों को उचित मात्रा में मिलाने से अनेक चमत्कारिक गुण प्रकट होते हैं वैसे ही किसी अच्छे कार्य के लिये एकत्रित हुये मनुष्यों का संगठन यज्ञ का ही एक रूप कहा जा सकता है। जैसे यज्ञ में ब्रह्मा, यजमान होता, ऋत्विक् सभी मिल कर यज्ञ कार्य को सम्पन्न करते हैं वैसे ही समझदार लोग परस्पर मिलकर परोपकार, धर्म, विद्यावृद्धि के कार्य करें यह अभिप्राय है।

५. **यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म** प्रत्येक श्रेष्ठ कर्म यज्ञ है। श्रेष्ठ कर्म उसे कहते हैं जिसकी सब लोग प्रशंसा करें और जिससे सबका हित होता है।

आज का समस्त रसायन शास्त्र एवं कलाकौशल यज्ञ अर्थात् संगतिकरण का ही परिणाम है जिससे समस्त विश्व लाभान्वित हो रहा है।

**यज्ञ से पर्यावरण में परिवर्तन -**

**यज्ञ इन्द्रमर्धयद् यद्भूमिं व्यवर्तयत।**

**चक्राष औपसदिवि।**

-साम.अथर्व २०/२७/५

यज्ञ सब ऐश्वर्यों की वृद्धि करता है। यह वातावरण, पर्यावरण को बदल देता है और यजमान का सिंहासन द्यौ लोक तक पहुंचा देता है।

पर्यावरण से अभिप्राय बाह्य वातावरण और व्यक्ति के मानस दोनों से है। यज्ञ से पर्यावरण की शुद्धि होती है। गोघृत एवं गोबर के कण्डों से यज्ञ करने पर कोलायडी अणु वायु को प्रदूषित करने वाले तत्वों से मिलकर उन्हें अहानिकारक खाद में परिवर्तित कर देते हैं जैसे कि मलिन जल में फिटकरी डालने से दूषित पदार्थ नीचे बैठ जाते हैं वैसे ही यज्ञ धूम से वायु में विद्यमान हानिकारक कण स्थूल होकर क्षारीय गुण वाले होकर उत्तम खाद में परिवर्तित हो जाते हैं।

इसी भांति यज्ञ करने वाले व्यक्ति का मानसिक तनाव, दमा, मृगी, स्नायु सम्बन्धी अनेक रोगों का शमन होता है। आजकल यज्ञ चिकित्सा द्वारा अनेक रोगों की चिकित्सा की जा रही है। इसीलिये शतपथ ब्राह्मण में 'स्वर्गकामो यजेत्' सुख की कामना करने वाले को यज्ञ करना चाहिये, यह कहा है।

यज्ञ देवत्व की प्राप्ति कराता है **अयं यज्ञो देवया अयंमियेध्य।** (ऋ. १/१७७/४)

यह यज्ञ परमेश्वर तक ले जाने वाला है और पवित्र करने वाला है। इसका दान जड़ चेतन सभी को लाभान्वित करता है। शतपथ ब्राह्मण (११/१/८/१-२) में कहा है- **असुराः स्वेष्वेवास्येषु जुहूततश्चेयः अथ देवा अन्योन्यस्मिन्नेव जुहनतश्चेरूः।** असुर अपना पेट भरने की सोचते हैं और देव वे होते हैं जो पहले दूसरों को खिलाकर फिर आप खाते हैं। यज्ञ में इदन्न मम की भावना इसी ओर संकेत कर रही है।

### ३. पितृयज्ञ

इसके अंतर्गत देव, पितर और ऋषि इन तीनों की गणना होती है। **विद्वांसो हि देवाः** विद्वानों का नाम देव हैं इनमें निम्न गुण देखे जाते हैं।

१. **सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः** (शत. १/१/१/१/४-५)

सत्याचरण करने वाले देव और सत्यासत्य का आचरण जिनका है, उन्हें मनुष्य कहते हैं।

२. **सदा देव अरेपसः** (साम. ५/२/१/६)

देव सदा परोपकार पवित्र स्वभाव, अहिंसा और सबकी उन्नति में प्रयत्नशील रहते हैं।

३. **प्राणं देवा उपासते** (अथर्व. ११/४/११)

देवता प्राणायाम का अभ्यास, प्राणशक्ति को धारण और प्राणों के भी प्राण परमेश्वर की उपासना करते हैं।

४. **देवोदानाद् वा दीपनाद्वा द्योतनाद् वा द्युस्थानो भवतीति** (निरूक्त)।

जड़ और चेतन दो प्रकार के देव हैं। आठ वसु, ग्यारह रूद्र बारह आदित्य इन्द्र एवं प्रजापति (यज्ञ) ये तैंतीस देवता है। जो प्राणियों को जीने के लिये संसाधन उपलब्ध कराते हैं। इनकी तृप्ति यज्ञ से होती है।

माता-पिता, गुरु, आचार्य, अतिथि और पति के लिये पत्नी तथा पत्नी के लिये पति देवता है। देवों का देव महादेव परमात्मा को कहते हैं जो इन सबका नियमन करता है।

५. **परोक्षप्रिया हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः** (शत.)

असुर इस लोक को ही सत्य मान खाने-पीने और मौजमस्ती में लगे रहते हैं। इसके विपरीत देव इस लोक के साथ परलोक अर्थात् अगले जन्म को ध्यान में रखकर कर्म करते हैं।

२. **पितर** - जो विद्वान् लोग मनुष्यों को ज्ञान चक्षु देकर उनके अविद्यारूपी अन्धकार का नाश करने वाले हैं उनको पितर कहते हैं। चौथी पीढ़ी में जीवित रहने वालों का नमा भी पितर है। **पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति।** (यजु.)

जो विद्या, सुशिक्षा एवं चरित्र की शिक्षा देकर पालन करते हैं उनका नाम पितर है। इनमें विद्वान् गुरुजन,

माता-पिता, दादा-परदादा आदि सभी की गणना की जा सकती है। जिनका स्वभाव श्रेष्ठ हो और जो सन्तानों या शिष्यों का हितचिन्तन करते हों।

३. ऋषि - ऋषिदर्शनात् स्तोमान् ददर्श। (निरुक्त २/३/११) मन्त्रों का साक्षात् करने वाले को ऋषि कहते हैं।

**प्रत्यर्थिर्यज्ञानामश्व हयो रथानाम्।**

**ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत् सखः।।**

-ऋ० १०/२६/५

यज्ञादि शुभ कार्यों में सब से आगे रहकर उसे पूरा करना मानव मात्र हितकारी और मेधावी जनों का जो मित्र है उसे ऋषि कहते हैं।

पितृयज्ञ में इन तीनों की पूजा, सम्मान, सत्कार, सेवा, भोजन, वस्त्रादि से इन्हें सन्तुष्ट करना आदि कर्तव्य है। देवेभ्यः स्वाहा पितृभ्यः स्वधा जड़ देवों की पूजा स्वाहाकार अर्थात् अग्निहोत्र से हो जाती है। अग्नि सब देवों का मुख है जिसमें दी गई विभिन्न देवों के लिये आहुतियाँ उनको प्राप्त हो जाती है।

चेतन देवों को तर्पण अर्थात् अन्न, भोजन, वस्त्रादि से सन्तुष्ट करना, उनकी सेवा करना और सदुपदेश ग्रहण करना चाहिये और उनके अनुभवों से सन्मार्ग का ग्रहण तथा दुर्गुण एवं दुर्व्यसनों का परित्याग करना उचित है।

माता-पिता अपने पुत्र-पुत्रियों को इस प्रकार आज्ञा दें-

**ऊर्ज वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रतम्।**

**स्वधा स्थ तर्पयत में पितृन्।। (यजु. २/३४)**

हे पुत्रों ! जो जो हमारे मान्य पिता, पितामहादि,

माता, मातामही आदि और आचार्य तथा इनसे भिन्न भी विद्वान् लोग जो अवस्था या ज्ञान में बड़े और मान्य करने योग्य हैं, तुम लोग उनकी उत्तम जल, रोगनाशक उत्तम अन्न, सब प्रकार के उत्तम फलों के रस आदि पदार्थों से नित्य सेवा किया करो कि जिससे प्रसन्न होके तुम लोगों को सदा विद्या देते रहें। ऐसा करने से तुम लोग भी प्रसन्न रहोगे। माता-पिता पितर लोगों से प्रार्थना करते हुये कह रहे हैं-

**आधत पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्।**

**यथेह पुरुषोऽसत्। -यजु. २/३३**

हे पितर गुरुजनों मेरे इस कुमार ब्रह्मचारी को जिसने सुन्दर वस्त्र एवं फूलों की माला पहन रखी है अपने गुरुकुल रूपी गर्भ में रखकर इसका निर्माण कीजिए जिससे यह पुरुष अर्थात् पूर्ण पुरुषार्थी, गुणों से विभूषित वीर, सुविद्वान् और सुबुद्धि वाला बन जाये।

ऋषि ऋण से अनृण होने के लिये जो विद्या पढ़ी है उसे औरों को पढ़ाना और जिनसे विद्या पढ़ी है उनकी सेवा करना चाहिये।

गुरुजनों ने विद्या देकर हमारे ज्ञान चक्षुओं का उन्मीलन कर हमें पशुत्व से छुड़कर देवत्व की प्राप्ति कराई है, उनकी माता-पिता के समान सत्कार करना हमारा कर्तव्य है। उनसे द्रोह भाव का त्याग करना चाहिये। जो विद्या पढ़कर अपने गुरुजनों का सम्मान नहीं करता, उसकी विद्या फलीभूत नहीं होती।

यहां स्मरण रहे कि जीवित पितरों का ही श्राद्ध एवं तर्पण होता है मृतकों का नहीं।

- आचार्य

गुरुकुल पौन्धा, देहरादून

**आचार्य डॉ. धनञ्जय जी की मारिशस में वैदिक प्रचार-प्रसारार्थ यात्रा**

श्रावणी उपाक्रम के शुभअवसर पर मारिशस में वेद, यज्ञ एवं योग के प्रचार-प्रसार के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा के निमन्त्रण पर आचार्य डॉ. धनञ्जय जी भारत से १८ जुलाई को मारिशस रवाना हुए। वे वहाँ २० जुलाई से २० अगस्त २०१५ तक वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करेंगे। वैदिक धर्मावलम्बी एवं आर्ष-ज्योतिः परिवार आचार्य डॉ. धनञ्जय जी की यात्रा की मङ्गल कामना करता है।

## अथर्ववेद के आलोक में आयुर्वेद विमर्श

□ कृष्णाकान्त वैदिक शास्त्री...

शतपथ ब्राह्मण ने यजुर्वेद के एक मंत्र की व्याख्या में प्राण को अथर्वा बताया है। इस प्रकार प्राण विद्या या जीवन-विद्या आथर्वण विद्या है।<sup>१</sup> हमें गोपथ ब्राह्मण से यह पता चलता है कि ब्रह्म शब्द भेषज और भिषग्वेद का बोधक है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जो अथर्वा है, वह भेषज है, जो भेषज है वह अमृत है, जो अमृत है, वह ब्रह्म है।<sup>२</sup> गोपथ ब्राह्मण से यह भी ज्ञात होता है कि अंगिरस का सम्बन्ध आयुर्वेद और शरीर-विज्ञान से है। अंगों के रसों अर्थात् तत्त्वों का जिसमें वर्णन मिलता है, वह अंगिरस कहा जाता है।<sup>३</sup> छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों में भी कहा गया है कि शरीर-विज्ञान और रसायन-विज्ञान अंगिरस विद्या हैं।<sup>४</sup> प्राण विद्या को भी अंगिरस-विद्या का नाम दिया गया है। प्राण अंगों के रस हैं। प्राणों के नियमानुसार चलने से ही जीवन है, इसलिए प्राण-विद्या को शतपथ ब्राह्मण और बृहदारण्यक उपनिषद् में अंगिरस विद्या का नाम दिया गया है।<sup>५</sup> चरक और सुश्रुत दोनों ने आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद या उपांग माना है। सुश्रुत संहिता के अनुसार इसके आठ भाग हैं। चरक संहिता का कहना है कि अथर्ववेद में इन विषयों के मंत्र हैं- स्वस्तययन, बलि, मंगल, होम, नियम, प्रायश्चित्त और उपवास। ये समस्त विषय आयुर्वेद के हैं, अतः हम निश्चयपूर्वक, यह कह सकते हैं कि अथर्ववेद में चिकित्सा का वर्णन है और अथर्ववेद और आयुर्वेद का घनिष्ट सम्बन्ध है।

**आयुर्वेद जीवन शास्त्र है-** चरक संहिता में कहा गया है कि आयुर्वेद वह शास्त्र है जिससे पुरुष का जीवन अर्थात् आयु शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के रोगों से मुक्त रहता है। उसकी इन्द्रियों और इन्द्रियों के विषय स्वस्थ रहते हुए अपना सारा व्यवहार यथेष्ट रूप से करने के समर्थ बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त उसके दुःखी जीवन का भी बोध यह कराता है।<sup>६</sup> आयुर्वेद वह शास्त्र है जो मनुष्य को सदाचार की शिक्षा देता है और उसको दूसरे प्राणियों के साथ सद्व्यवहार के साथ चलने योग्य बनाता है। मानसिक उन्नति

के साथ-साथ सुबुद्धि सम्पन्न होकर लोकोपकारक कर्म करते हुए उसका जीवन हितकारी बनाता है और इसके साथ ही अहितकारी जीवन का भी बोध कराता है। आयुर्वेद वह शास्त्र माना गया है जिसके द्वारा आयु का मान ज्ञात किया जा सकता है यह मान ज्ञानेन्द्रियों, मन और बुद्धि के विकृत लक्षणों की उपलब्धियों और अरिष्ट लक्षणों के उत्पन्न होने से प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार जिस ग्रन्थ में आयु सम्बन्धी सभी विषयों का युक्तियुक्त प्रकार से सुन्दर वर्णन किया गया हो, उसे आयुर्वेद कहते हैं।

**आयु के चार प्रकार-** महर्षि चरक ने कहा है कि मनुष्यों के जीवन एक जैसे नहीं हैं क्योंकि वे अपने पूर्वोक्त कर्म और इस जन्म में किए गए पौरुष के अनुसार फल भोगते हैं। चरक के अनुसार आयु के चार भेद बताए गए हैं, इनके लक्षण निम्न प्रकार हैं-

**१- हितायु का लक्षण-** सर्वजन हितैशी, निर्लोभ, शान्त, विवेकी, सतत जागरूक, धर्म, अर्थ और काम का सन्तुलन ठीक रखने वाला, पूज्यपूजक, वृद्धजनसेवी, मनोविकार रहित, सहिष्णु, स्मृतिमान् और बुद्धिमान् व्यक्ति 'हितायु' होता है।

**२- अहितायु का लक्षण-** दूसरों का अपकारक, तस्कर, उद्धत, अधार्मिक, निर्धन, अज्ञानी, मनोविकारग्रस्त, विषयासक्त, वासना में लिप्त, असहिष्णु, विवेकहीन, स्मृतिभ्रष्ट, धृतिभ्रष्ट, बुद्धिभ्रष्ट, द्वेष रखने वाला, क्रोधी, आलसी और कर्तव्याकर्तव्य ज्ञानशून्य व्यक्ति 'अहितायु' होता है।

**३- सुखायु का लक्षण-** शरीर या मानस रोग से मुक्त, युवास्था-सम्पन्न, बल-वीर्य-यश से सम्पन्न, उच्च मनोबल वाला, धन-जन से सम्पन्न, जीवनोपयोगी साधनों से सम्पन्न, सन्तुष्ट और स्वतंत्र व्यक्ति 'सुखायु' होता है।

**४- दुःखायु का लक्षण-** रोगी, वृद्ध, असमर्थ, निर्बल, हीन मनोबल वाला, अन्ध, बधिर, परतंत्र और साधनहीन व्यक्ति 'दुःखायु' होता है।

**आयुर्वेद पुण्यतम वेद है-** चारों वेद पारलौकिक फल देने वाले हैं, जब कि आयुर्वेद इसी लोक में फल देने वाला है और पुण्य कार्य होने के कारण परलोक के लिए भी कल्याणकारी होता है। अपनी इस विशेषता के कारण यह अन्य वेदों की भांति महत्त्व रखता है। इसीलिए इसे महर्षि चरक द्वारा पुण्यतम वेद कहा गया है।

**रोगों की उत्पत्ति के कारण-** रोगों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में चरक संहिता में निम्न सूत्र दिया गया है-**यदा ह्यस्मिन् शरीरे धातवो वैषम्यमापद्यन्ते तदा क्लेशां विनाशं वा प्राप्नोति। वैषम्यगमनं हि पुनर्धातूनां वृद्धिं ह्यस गमनम्।।**

अर्थात् जब षड्धातु पुरुष के शरीर के धातुओं में विषमता आ जाती है। कोई धातु बढ़ जाता है और कोई घट जाता है तो इस प्रकार की विषमता से शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। अथवा नाश को प्राप्त होता जाता है। इससे सिद्ध होता है कि शरीर में धातुओं का विषमता आ जाने से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रोगों के निदान के सम्बन्ध में आगे लिखा गया है- **तदेव तस्माद् भेषजं सम्यगवचर्यमाणं युगपन्मूनातिरिक्तानां धातूनां साम्यकरं भवति, अधिकमपि कर्षति न्यूनं आप्याति।**

अर्थात् उचित रूप से विचार पूर्वक ओषधि के प्रयोग से बढ़े हुए धातुओं को घटाने से और घटे हुए धातुओं को बढ़ाने से धातुओं की साम्यावस्था लाई जाती है। इससे सिद्ध होता है कि धातुओं की साम्यावस्था से शरीर स्वस्थ होता रहता है।

चरक संहिता में ही विकारों के सम्बन्ध में निम्न सूत्र दिया गया है- **“विकारो धातु वैशम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते”**

अर्थात् धातुओं की विषमता को विकार कहते हैं और इनकी साम्यावस्था को आरोग्य कहते हैं। महर्षि चरक ने एक सूत्र में कहा है-

**येषामेव हि भावनां संपत् संजनयेन्नरम्।**

**तेषामेव विचद्व्याधीन् विविधान्समुदीरयेत्।।**

अर्थात् जिन भावों या सजातीय भूतों के प्राकृतिक प्रशस्त गुणों से संयोगी पुरुष की उत्पत्ति होती है। उन ही के विगुणों से अर्थात् उनकी विकृति से मनुष्य की व्याधियां उत्पन्न होती हैं।

उपरोक्त सूत्रों के अर्थ से स्पष्ट है कि धातुओं या भूतों की विषमता से ही विकार उत्पन्न होते हैं और इनकी साम्यावस्था में मनुष्य का स्वास्थ्य उचित बना रहता है। इसका अभिप्राय यह निकलता है कि यदि हम उचित रूप से आहार, विहार, व्यायाम, विश्राम आदि के प्राकृतिक नियमों का पालन करते रहते हैं तो हम धातुओं की साम्यावस्था को बनाए रखने में समर्थ रहते हैं और स्वस्थ जीवन जीने में सफल हो सकते हैं। ऐसा जीवन निश्चित रूप से दीर्घ भी हो सकेगा, इसमें कोई भ्रांति नहीं होनी चाहिए।

**शरीर का आधार धातुएं हैं-** हम अथर्ववेद में कई स्थानों पर त्रिधातु अर्थात् वात, पित्त और कफ शरीर के इन तीन मूल तत्त्वों का उल्लेख पाते हैं। इस शरीर को एक सुन्दर गृह माना गया है जो तीन धातुओं (वात, पित्त और कफ) का बना हुआ है। यह तीन प्रकार के दुःखों (आध्यात्मिक, आदिदैविक और आदिभौतिक) से मुक्त हो। आयुर्वेद का भी यही उद्देश्य है कि शरीर को तापत्रय से मुक्त किया जाए।<sup>१८</sup> पित्त का भी कई मंत्रों में उल्लेख है।<sup>१९</sup> एक स्थान पर इनको अभ्रजा (वर्षा या ठण्ड से उत्पन्न होने वाला कफ), वातजा (वायु से उत्पन्न होने वाला वात) और शुष्म (गर्मी से उत्पन्न होने वाला पित्त) कहा गया है।<sup>२०</sup> एक अन्य स्थान पर इनको वायु, अर्क और रयि नाम से निर्दिष्ट किया गया है।<sup>२१</sup>

चरक, सुश्रुत और अष्टांगहृदय में वात, पित्त और कफ इन तीनों को शरीर का आधार माना गया है और यह माना गया है कि इन तीनों के विकार से ही शरीर में विभिन्न प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं।<sup>२२</sup> सुश्रुत का कहना है कि जिस प्रकार तीन खम्भों से मकान धारण किया जाता है, उसी प्रकार इन तीनों से शरीर स्थित है। इसीलिए शरीर को त्रिस्थूण कहते हैं।<sup>२३</sup> अष्टांगहृदय का कहना है कि वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं। ये विकृत होने पर शरीर को हानि पहुंचाते हैं और अविकृत रहने पर शरीर को स्थिर रखते हैं।<sup>२४</sup> अथर्ववेद में जिस प्रकार वात, पित्त और कफ को वायु, अर्क (अग्नि) और रयि (सोम) कहा गया है, उसी

प्रकार चरक और सुश्रुत ने वायु को वात, अग्नि को पित्त और सोम को श्लेष्म कहा है।<sup>१५</sup>

**त्रिदोष सिद्धान्त की उत्पत्ति-** आयुर्वेदिक विशेषज्ञों ने धातुओं का विश्लेषण किया और इसके फलस्वरूप पृथ्वी, जल और धातुओं में बहुत अंशों तक समान गुण पाए गए। इस निर्णय के आधार पर उन्होंने लोक और पुरुष का तुलना भी की और यह निष्कर्ष निकाला कि जिस प्रकार लोक में पृथ्वी, जल और धातुओं के गुण धर्म और कार्य सोम के समान हैं, उसी प्रकार पुरुष के शरीर में इसके समान कफ धातु है। जो गुण धर्म और कार्य सूर्य के हैं, वही कुछ शरीर में पित्त धातु के हैं। इसी प्रकार लोक में वायु के गुणधर्म और कार्य के समान शरीर का वात धातु है। इसके साथ-साथ उन्होंने यह भी घोषणा की, कि जिस प्रकार पृथ्वी और जलरूप सोम, अग्निरूप सूर्य और वायु, प्राकृत अवस्था में रहकर लोक का कल्याण करते हैं और विकृत होकर इसको उपद्रवग्रस्त कर सकते हैं, ठीक उसी प्रकार शरीर में स्थित वात, पित्त और कफ धातु प्राकृतावस्था में समावस्था में रहकर, शरीर को धारण करते हुए स्वस्थ रखते हैं और विकृत होकर रोगग्रस्त या नष्ट कर सकते हैं। त्रिदोष सिद्धान्त के आधार पर ही आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली की नींव रखी गई है जिसमें अनेक द्रव्यों के आश्रित अनेक प्राकृतिक रसों और गुणों से युक्त विविध प्रकार की ओषधियां और भेषज कल्पनाएं की गई हैं जिनका प्रयोग स्वस्थ अवस्था में बल, और ओज की वृद्धि के लिए और रोगी हो जाने पर रोग की निवृत्ति के लिए किया जाता है।

**अथर्ववेद में शरीर के अंगों का वर्णन-** अथर्ववेद में शरीर के अंगों का वर्णन मिलता है।<sup>१६</sup>

**अथर्ववेद में रोग के कारण-** इसमें ज्वर के लिए तष्मन् शब्द का प्रयोग मिलता है। चरक ने ज्वर को सारे रोगों में प्रधान माना है क्योंकि यह सारे प्राणियों के प्राणों को हरता है और देह, मन व इन्द्रियों को कष्ट देता है। यह शरीर को संतप्त करता है, इसलिए इसे ज्वर कहते हैं। अन्य रोगों की अपेक्षा इसकी चिकित्सा कठिन मानी गई है।<sup>१७</sup>

**अथर्ववेद में रोगों के नाम-** अथर्ववेद में विभिन्न रोगों के नाम मिलते हैं। कुछ नाम इस प्रकार हैं- शीर्षक्ति (शिरोवात), शीर्षमय (सिरदर्द), कर्णशूल (कान दर्द), विलाहित (पीलिया), पाण्डु रोग, शीर्षण्य (मस्तिष्क-विकारसम्बन्धी रोग)।<sup>१८</sup> हरिमा (पीलिया, जलोदर)।<sup>१९</sup> कास (खांसी, यक्ष्मा रोग) जो सारे अंगों में फैल जाता है।<sup>२०</sup> शीर्षलोक (सिर-सम्बन्धी रोग), सदन्दि (प्रतिदिन वाले रोग), हायन (साल भर चलने वाले रोग)।<sup>२१</sup> आशरीक (हड्डी टूटना आदि), बलास (खांसी, क्षय), पीठ दर्द या कमर दर्द तथा ठण्ड से होने वाली बीमारियां।<sup>२२</sup>

अथर्ववेद में प्रत्येक अंग में होने वाले रोगों का भी उल्लेख मिलता है-आस्राव (पेचिस)।<sup>२३</sup> विसल्प (पीड़ा), विद्रध (फोड़ा), वातीकार (वात रोग)।<sup>२४</sup> उनमत्तता।<sup>२५</sup> कुष्ठ।<sup>२६</sup> क्लीबत्व।<sup>२७</sup> गर्भदोष।<sup>२८</sup> गण्डमाला।<sup>२९</sup> ज्वर।<sup>३०</sup> दुःस्वप्न।<sup>३१</sup> मूत्रकृच्छ्र।<sup>३२</sup> यक्ष्म।<sup>३३</sup> रुधिर-स्राव।<sup>३४</sup> श्वेतकुष्ठ।<sup>३५</sup> हृद्रोग।<sup>३६</sup> क्षेत्रियरोग।<sup>३७</sup> अथर्ववेद में वर्णित विभिन्न चिकित्सा अथर्ववेद में - अथर्ववेद में चिकित्साओं को चार भागों में बांटा गया है।

१- मनुष्यज- इनमें वैद्य आदि के द्वारा की जाने वाली चिकित्साएं हैं।

२- देवी- इनमें पंचतत्त्वों से की जाने वाली चिकित्साएं सम्मिलित हैं।

३- आंगिरसी चिकित्सा- मानसिक शक्ति या इच्छा शक्ति से होने वाली चिकित्सा है।<sup>३८</sup>

४- आथर्वणी चिकित्सा- अथर्वा योगी को कहते हैं, अतः योग सम्बन्धी चिकित्सा या योगाभ्यास से की जाने वाली चिकित्सा है।<sup>३९</sup>

उपरोक्त चिकित्सा पद्धतियों के अतिरिक्त अथर्ववेद में निम्न चिकित्सा पद्धतियों का भी उल्लेख मिलता है-

१- सूर्यकिरण चिकित्सा- सूर्य की किरणें शरीर को सुख देती हैं। अथर्ववेद में सूर्य-किरणों से चिकित्सा का बहुत विस्तार से वर्णन मिलता है।<sup>४०</sup>

२- **जल चिकित्सा**- अथर्ववेद में जल चिकित्सा को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। जल से सभी प्रकार के रोग नष्ट किए जा सकते हैं।<sup>४२</sup>

३- **प्राकृतिक चिकित्सा**- अथर्ववेद में प्राकृतिक चिकित्सा की कई विधियों का उल्लेख मिलता है। इनमें प्राणायाम- प्राकृतिक चिकित्सा सूर्य-चिकित्सा और चन्द्र-चिकित्सा मुख्य हैं। चन्द्रमा को आयु बढ़ाने में सहायक माना गया है।<sup>४३</sup>

४- **मानस चिकित्सा**- अथर्ववेद में मनोबल पर विशेष महत्त्व दिया गया है। मानस चिकित्सा से श्री-लाभ होता है। मनुष्य स्वस्थ और नीरोग होकर तेजस्वी होता है।<sup>४४</sup>

५- **यज्ञ चिकित्सा**- अथर्ववेद में यज्ञ चिकित्सा को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि जिस घर में नियमपूर्वक यज्ञ किया जाता है वहां रोग के कृमि स्वयं नष्ट हो जाते हैं। अतः उसके यहां रोग का नाश हो जाता है।<sup>४५</sup>

६- **शल्य चिकित्सा**- अथर्ववेद में शल्य चिकित्सा का भी उल्लेख मिलता है। रोहणी ओषधि को घाव, चोट, हड्डी टूटने आदि की चिकित्सा बताया गया है।<sup>४६</sup>

७- **सर्पविष चिकित्सा**- अथर्ववेद में १८ प्रकार के सांपों का उल्लेख मिलता है।<sup>४७</sup> अथर्ववेद में ताबुव ओषधि से सर्पविषनाशन का वर्णन है।<sup>४८</sup> अन्य कई प्रकार की चिकित्साओं का भी वर्णन मिलता है।

८- **कृमि चिकित्सा**- अथर्ववेद में कृमियों के दो रूप बताए गए हैं- दृष्ट (दीखने वाले) और अदृष्ट (न दीखने वाले)। इनके निवास स्थान आंत, सिर, पसली आदि बताए गए हैं। कई स्थानों पर सूर्य को कृमि नाशक कहा गया है। सूर्य को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सभी कृमियों को नष्ट करने वाला कहा गया है।<sup>४९</sup>

९- **केशरोग चिकित्सा**- अथर्ववेद में बालों में होने वाले रोगों की चिकित्सा और बाल बढ़ाने के उपायों का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद में दो सूक्तों में नितली ओषधि को केश रोगों की चिकित्सा बताया गया है।<sup>५०</sup>

१०- **मानसिक चिकित्सा**- अथर्ववेद में क्रोध की चिकित्सा का वर्णन किया गया है।<sup>५१</sup> इसमें दर्भ और भूरिमल

ओषधियों का वर्णन है। भावप्रकाश निघण्टु में कुश को शीतल कहा गया है जो क्रोध को शान्त करता है।<sup>५२</sup>

११- **उन्माद रोग चिकित्सा**- अथर्ववेद में उनमत्ता के नाशन का उपाय बताया गया है।<sup>५३</sup> मनुष्य के हृदय में जो आसुरी भावनाएं हैं, वे उसके हृदय को विक्षुब्ध करती रहती हैं। इससे मनुष्य अपने को भूल कर कुमार्गगामी हो जाता है। ऐसी अवस्था को उन्माद की अवस्था कहा जाता है। ऐसे विचारों से युक्त व्यक्ति को राक्षस या आसुरी भावना वाला कहा जाता है। अथर्ववेद में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है।<sup>५४</sup>

१३- **नेत्र रोग चिकित्सा**- अथर्ववेद में नेत्र रोग चिकित्सा का वर्णन भी पाया जाता है।<sup>५५</sup>

१४- **कास रोग (खांसी) चिकित्सा**- अथर्ववेद में सारे शरीर में फैली खांसी की चिकित्सा ओषधि सेवन और पहाड़ में रहना बताया गया है।<sup>५६</sup> खांसी को मनोबल से दूर करने का भी उल्लेख है।<sup>५७</sup>

१५- **गंडमाला-चिकित्सा**- अथर्ववेद में गंडमाला रोग का वर्णन मिलता है। इसका एक नाम रामायणी भी दिया गया है। इस रोग के स्थान गर्दन, बगल और स्त्रियों के गुप्त स्थान बताए गए हैं।<sup>५८</sup>

१६- **आनुवंशिक रोग चिकित्सा**- अथर्ववेद में माता-पिता आदि के रोग सन्तान में आने को आनुवंशिक या क्षेत्रिय रोग कहा गया है।<sup>५९</sup>

१७- **हृदय रोग-चिकित्सा**- अथर्ववेद में मृग के सींग को आनुवंशिक हृदय रोगों का नाशक बताया गया है।<sup>६०</sup>

१८- **ज्वर चिकित्सा**- अथर्ववेद में ज्वर चिकित्सा का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। कूठ ओषधि को सारे रोगों को दूर करने वाला कहा गया है। कूठ सिर के रोगों को, प्रतिदिन आने वाले ज्वर को, तीसरे दिन आने वाले ज्वर को और साल भर रहने वाले ज्वरों को नष्ट करने वाला बताया गया है।<sup>६१</sup>

१९- **अग्निमाद्य (कब्ज) आदि रोग**- अथर्ववेद में अजीर्ण (कब्ज), वमन (कै) आदि रोगों की चिकित्सा का भी वर्णन मिलता है। इसके तीन सूक्तों के २४ मंत्रों में अपामार्ग ओषधि के गुणों का विस्तार से वर्णन किया गया है।<sup>६२</sup>



**२०- गुप्त रोग-चिकित्सा-** अथर्ववेद में पुरुषों और स्त्रियों के गुप्त स्थानों पर होने वाले रोगों की चिकित्सा का वर्णन भी मिलता है। अर्षोरोग या बवासीर में गुप्त स्थानों पर या मुह आदि में मस्से हो जाते हैं और खून गिरता है। इसके साथ ही खुजली भी होती है। इसको आयुर्वेद में दुर्णाम नाम दिया गया है। दुर्णाम बवासीर की चिकित्सा पृश्निपर्णी ओषधि बताई गई है।<sup>६३</sup>

**२१- स्त्रीरोग-चिकित्सा-** अथर्ववेद में स्त्रियों के रोगों की चिकित्सा का भी वर्णन मिलता है। वन्ध्यात्व रोगों की चिकित्सा में ऋषभक ओषधि का उल्लेख किया गया है।<sup>६४</sup>

**२२-श्वेत-कुष्ठ-चिकित्सा-** अथर्ववेद में श्वेत कुष्ठ के चार कारण बताए गए हैं- १. अस्थिज अर्थात् हड्डियों में हुए विकार से उत्पन्न। २. तनूज अर्थात् शारीरिक या मांस के दोषों से उत्पन्न। ३. त्वचा के विकार से उत्पन्न। ४. दोषपूर्ण आचरण से उत्पन्न। अथर्ववेद में बताया गया है कि रामा कृष्णा और असिक्नी ओषधियां श्वेत-कुष्ठ को दूर करें।<sup>६५</sup>

**२३-क्षत, व्रण आदि की चिकित्सा-** अथर्ववेद में ताजी चोट के लिए जल-चिकित्सा बताई गई है। घाव, चोट आदि के लिए रोहणी ओषधि का उल्लेख मिलता है।<sup>६६</sup>

**२४- वातरोग-चिकित्सा-** अथर्ववेद में कहा गया है कि पिप्पली अर्थात् पीपर के सेवन करने वाला कभी रोग ग्रस्त नहीं होता है।<sup>६७</sup> पीपर से उनमाद रोग, वातरोग और पक्षाघात की चिकित्सा की जाती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अथर्ववेद में आयुर्वेद का मूल ज्ञान विस्तृत रूप से उपलब्ध होता है। हम केवल संक्षिप्त परिचयात्मक वर्णन ही दे पाए हैं। अथर्ववेद प्रतिपादित आयुर्वेद की चिकित्सा ही वास्तविक चिकित्सा पद्धति हो सकती है, जो प्राकृतिक नियमों के आधार पर खड़ी है और सर्व साधारण व्यक्ति को न केवल स्वस्थ रख सकती है अपितु दीर्घजीवी भी बना सकती है।

**सन्दर्भ:-**

१. यजु० ११.३२। श०ब्रा० ६.४.२.२
२. एतम् अङ्गरसं सन्तम् अङ्गिरा इत्याक्षते। गो० ब्रा० १.१.७

३. येऽङ्गिरसः स रसः। गो० ब्रा० १.३.४
४. छा० उप० १.२.१०। बृह० उप० १.३.१९
५. प्राणो वा अङ्गिराः। शत० ब्रा० ६.१.२.२८
६. च० सू० ०१.४१
७. च० सू० ३०.२४
८. पित्तम्। अग्ने पित्तमपामसि। अ० १.२४.१, १८.३.५
९. त्रिधातु शरणं त्रिवरूथम्०। अ० २०.८३.१
१०. यो अभ्रजा वातजा य च शुष्मो०। अ० १.१२.३
११. वायुम् अर्कम् रयिम्०। अ० १८.४.३
१२. वायुः पित्तं कफ चोक्तः०। चरक० सूत्र० २१.३
१३. सुश्रुत सूत्र० २१.६
१४. अष्टांग० सूत्र० १.६.७
१५. अ० १८.४.२९
१६. अ० २.३३.१-७
१७. चरक निदान १.१६ और ३५
१८. शीर्षिकितं शीर्षामयं०। अ० ९.८.१
१९. हरिमाणम्०। अ० ९.८.९
२०. अ० १.१२.३
२१. अ० १९.३९.१०
२२. अ० १९.३४.१०
२३. अ० १.२.४
२४. अ० ९.८.२०
२५. अ० ६.१११
२६. अ० १९.३९
२७. अ० ६.१३८
२८. अ० ८.६
२९. अ० ७.७४
३०. अ० १.३
३१. अ० २०.९६
३२. अ० १.३
३३. अ० १.१२.३
३४. अ० १.१७
३५. अ० १.२३
३६. अ० १.२२.१
३७. अ० २.८
३८. अ० ४.४.५
३९. अ० ११.४.१६
४०. अ० ८.१.५
४१. अ० १.२२.३
४२. अ० ७.८१.२
४३. अ० अ० ५.११.१
४४. अ० ७.७६.५
४५. अ० ४.१२.१
४६. अ० ५.१३.५ से ७
४७. अ० ५.१३.१०
४८. अ० २.३१.२
४९. अ० ६.५२.१५
५०. अ० सू० १३६ व १३७
५१. अ० ६.४३.१-२ ५२. भाव प्र० नि० गु० श्लोक १६६
५३. अ० ६.१११.१ से ४
५४. अ० ४.३७.१ से १२
५५. अ० ४.२०.१ से ९
५६. अ० अ० १.१२.३
५७. अ० ६.१०५.२
५८. अ० ६.८३.३
५९. अ० ५.३०.४
६०. अ० ३.७.२
६१. अ० अ० १९.३९.१०
६२. अ० ४ सू० १७ से १९
६३. अ० २.२५.१-२
६४. अ० ३.२३.१ से ६
६६. अ० ४.१२.१ से ७
६५. अ० १.२३.१
६७. अ० ६.१०९.२

- देहादून, उत्तराखण्ड

## स्वतन्त्रता दिवस व देश प्रेम

□ विकास शास्त्री...✍

स्वतन्त्रता पाने को हमनें, अपना सब कुछ वारा था,  
भारत माँ की लाज बचे, बस यही हमारा नारा था।  
हमने लौह श्रृंखला तोड़ी, पाने को यह स्वाधीनता,  
शत्रु भगाया था, स्वदेश से, मिटाने को वह खिन्नता।  
हम भारत के, देश हमारा, यही हमारा बाना है,  
भूल न जाना, इस दिन को, यह पावन पर्व हमारा है॥

(आचार्यश्यामलाल)

स्वतन्त्रता प्राणिमात्र की स्वाभाविक प्रवृत्ति है,  
क्योंकि यह प्रसन्नता का मुख्यद्वार है। प्रसन्नता मन को  
रुचने अर्थात् अच्छा लगने की मानसिक या भावनात्मक  
अवस्था है।

हमारा सौभाग्य है कि हम स्वतंत्र भारत के  
नागरिक हैं। जरा सोचिए आज से उनहत्तर साल पूर्व  
हमारे पूर्वज गुलामी वाली यातनाओं से भरी जिन्दगी  
कैसे जीते रहे होंगे? सोचने मात्र से पसीना आ जाता है,  
भौंहे तन जाती हैं, आंखों का डोरा लाल हो उठता है।  
मुझे पं. रामप्रसाद बिस्मिल की एक गजल याद आ रही  
है कि-

सरफरोशी की तमन्ना है तो सर पैदा करो।

दुश्मने हिन्दुस्तान के दिल में डर पैदा करो॥

फूंक दो बर्बाद कर दो आशियां सैय्याद को।

शरबाजो अब जरा फिर से शरर पैदा करो॥

झौंक दो दोजख की भट्टी में तुम इंगलिस्तान को।

जल के हो जाएं खाक गोरे वह हशर पैदा करो॥

वीर हकीकत राय की कुछ पंक्तियाँ भी देखें-

चाहे भले ही काट लो प्रत्येक अंग शरीर का,  
विचलित कदापि न हो सकेगा मन हकीकत वीर का।

मरता हकीकत एक है आज अत्याचार से,  
होगे हकीकत सैंकड़ों इस रुधिर की धार से।

स्वतंत्रता सतत सघर्षों की परिणति है। खैर  
आजादी मिली तो हमने हासिल क्या किया? दौयम  
दर्जे की राजनीति और जनसंख्या का विस्फोट। भला  
हो हमारे पुरखों का उन्होंने दूरदृष्टि रखकर हमारा एक  
पवित्र संविधान रचा व रियासतों का विलयात्मकरूप  
अर्थात् भारत संघीय राज्य विरासत के रूप में हमें  
सौंपा। अब इसकी सम्प्रभुता एवं शुचिता बनाए रखना  
हमारा नैतिक एवं मौलिक कर्तव्य है।

आधुनिक भौतिक सुविधा सम्पन्न प्रगतिवादी  
समाज में कुछ तथाकथित शिक्षाविद् और समाज-सुध  
रक प्रच्छन्न रूप में अर्थात् छुपे हुए भावों से कुटिल  
नीतिपूर्वक भारत राष्ट्र की अस्मिता पर निशाना साधे  
हुए हैं। कहना न होगा ये लोग धर्म के सौजन्य से  
अथवा अन्य भावनात्मक तरीकों से मीडिया माध्यम  
द्वारा जनसामान्य में भ्रमात्मक विचारों से भयंकर विष  
घोल रहे हैं। सही मायनों में शिक्षाविदों का शिक्षाशास्त्र  
तो किसी कवि की दो पंक्तियाँ हैं-

भरा नहीं जो भावों से बहती जिसमें रसधार नहीं।

हृदय नहीं पत्थर है वो जिसे स्वदेश से प्यार नहीं।

आज कश्मीर की घाटी में अपने ही अपनों  
पर गैरों जैसा व्यवहार कर रहे हैं। भारतीय सैनिकों की  
वीरता जग-जाहिर है। स्थानीय जनता-जनार्दन का हमारी  
सेना हर परिस्थिति में संरक्षण करती रही है और  
करती रहेगी। वर्तमान परिस्थिति में सैनिक की मनोदशा  
को किसी कविवर ने ठीक ही कहा है कि-

सुमनों वाली सेज छोड़कर, क्यों कांटों से मोह हो गया।  
लगे पराए भी अपनों से, क्यों अपनों से द्रोह हो गया॥

पूर्वप्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री जी का  
जयघोष जय-जवान, जय-किसान का स्मरण कर मुझे

सैनिक के साथ-साथ किसान की दुर्दशा पर भी श्री केदारनाथ अग्रवाल की कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रसंगवश याद आ रही हैं कि-

बस यही नहीं, जो भूख मिली।  
सौ गुनी बाप से अधिक मिली।  
अब पेट खलाए फिरता है।  
चौड़ा मुंह बाए फिरता है।  
वह क्या जाने आजादी क्या?  
आजाद देश की बातें क्या?

किसान परिवार की दुर्दशा अथवा समाज में निर्धन परिवारों की दुर्दशा देखकर आजादी की उमंग फीकी पड़ जाती है। स्वतन्त्रता के सम्पूर्ण सात दशकों के व्यतीत होने पर भी समाज में विभिन्न रूढ़िगत कुरीतियाँ व्याप्त हैं दहेजप्रथा अभिशाप पर किसी कवि का व्यंग्य है कि-

ममता अपनी मर्यादा का, पालन करती चली गई।  
डोली में संजकर आई थी, अर्थी में बैठ चली गई।  
उपर्युक्त समस्याओं पर विचार कर इनका समाधान कर, अपने देश को विकास के मार्ग पर रखना होगा।

भारतीय गणतन्त्र समस्त भूमण्डल का सबसे विशाल, समृद्ध व वैविध्यपूर्ण गणराज्य है। आज पुनः सारी दुनिया विश्वगुरु भारत को निहार रही है। अतः विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और चौथे स्तम्भ मीडिया (जनसंचार) का निष्पक्षतापूर्ण एवं दायित्व की गरिमा से युक्त होकर लोकहित में कार्य करना संविधान ही नहीं हमारी सभ्यता व संस्कृति का भी ध्येय है। राष्ट्रकवि हरिओम पंवार ने इस विषय को कुछ यों कहा है कि-

मैं भी गीत सुना सकता हूँ, शबनम के अभिनन्दन के।  
मैं भी ताज पहन सकता हूँ, नन्दन वन के चन्दन के।  
लेकिन जब तक पगडण्डी से, संसद तक कोलाहल है।  
तब तक केवल गीत पढ़ूँगा, जन गण-मन के क्रन्दन के।

मित्रो! आज हम सभी को मिलकर पुनः रामप्रसाद विस्मिल के शब्दों में देशरहित के लिए सच्ची प्रतिज्ञा करनी होगी-

देश के वास्ते हम लाख तकलीफें उठायेंगे।  
जरूरत गर पड़ेगी जान पर भी खेल जायेंगे।

-सम्पादक- हरिप्रभा

हरियाणा संस्कृत अकादमी, पंचकूला

## अमेरिका में पूज्य स्वामी प्रणवानन्द जी महाराज

श्रीमद्दयानन्द वेदार्थ महाविद्यालय-न्यास के संचालक एवं अनेक आर्ष गुरुकुलों के संस्थापक गुरुवर्य स्वामी प्रणवानन्द महाराज वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसारार्थ एवं गुरुकुल के संचालनार्थ १० जुलाई से ८ अगस्त पर्यन्त अमेरिका प्रवास पर हैं। स्वामी जी शिकागो, ह्युस्टन, आट्लांटा, न्यूयॉर्क आदि स्थानों पर वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करेंगे। स्वामी जी शिकागो आर्यसमाज व आर्य प्रतिनिधि सभा अमेरिका द्वारा आयोजित आर्य महासम्मेलन में अपना आशीर्वाद देंगे। भारतीय मूल के वैदिकधर्मावलम्बी आर्यमहानुभाव स्वामी जी के आगमन से अत्यन्त उत्साहित हैं। गुरुकुल एवं आर्ष-ज्योतिः परिवार अमेरिका प्रवास पर स्वामी जी का हार्दिक अभिनन्दन करता है।

घर बैठे पढ़ने के लिए क्लिक करें - [www.pranwanand.org](http://www.pranwanand.org)

आर्ष-ज्योतिः-(श्रावण-भाद्रपद-२०७३/अगस्त-२०१६)

19

## संस्कृत नाटकों में भौगोलिक जानकारी की विवेचना

□ जीवन आर्य, शोधच्छात्र...✍

संस्कृत नाटकों से प्राचीन भारतवर्ष की भौगोलिक जानकारी बहुत कुछ प्राप्त होती है। इस जानकारी को प्राप्त करने में कुछ कठिनाइयां भी हैं, क्योंकि अनेक बार भूगोल का पूरा स्पष्टीकरण नहीं होता। इसका प्रमुख कारण पौराणिक परम्पराओं पर विश्वास और कवियों का कल्पना की उड़ानें हैं। उदारण के रूप में 'अनर्धराघव' में मुरारि द्वारा प्रस्तुत भौगोलिक विवरण है। वे हिमालय से निकलने वाले झरनों के गिरने का उल्लेख दक्षिण समुद्र पर सेतु बंधवाते है।<sup>१</sup> भौगोलिक दृष्टि से हिमालय से निकलने वाले झरने पूर्व तथा पश्चिम समुद्र में गिरते हैं तथा प्रकाशमान औषधियां भारतवर्ष के उत्तर में स्थित हिमालय पर्वत पर होती है।

परम्परागत पौराणिक वर्णनों के कारण नाटकों के भौगोलिक वर्णनों की यथार्थता को समझने में अनेक बार कठिनाई होती है मुरारि ने वर्णन किया है कि लंका-युद्ध के बाद राम का विलान सीधे हिमालय पर्वत पर गया। यहां से वह मन्दराचल और कैलाश पर्वतों पर होते हुए मेरु पर जाता है। इस पर्वत की तलहटियों में चन्दन के वृक्ष हैं। यहां में यह विमान सीधा चन्द्रलोक के समीप पहुंचा है और वहां से नीचे उत्तर कर समुद्रतटवर्ती भूमि पर आकर अगस्त्य के आश्रम में होता हुआ पुनः उत्तर की ओर बढ़ता है।

नाटकों में भारतवर्ष की सीमाओं का भी अधिक स्पष्ट संकेत नहीं है। इस देश के लिए जम्बूदीप, आर्यावर्त, अन्तर्वेदी, भारतवर्ष आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। विद्वानों द्वारा इन नामों की तथार्थता के सम्बन्ध में बहुत कुछ विचार करने पर भी उनकी वैज्ञानिकता सन्दिग्ध बनी हुई है। सिंहल और लंका की भौगोलिक स्थिति पर भी विवाद है। यह भी विवादास्पद है कि ये दोनों नाम एक ही स्थान का संकेत करते हैं, या भिन्न स्थानों का। नाटकों में अनेक स्थानों के वर्णनों में परस्पर विरुद्धता भी है। 'हनुमन्नाटक' में एक स्थान पर सात कुलपर्वत<sup>२</sup> और दूसरे स्थान पर आठ कुलपर्वत कहे गये हैं।<sup>३</sup>

इतनी अस्पष्टताओं के होने पर भी संस्कृत नाटकों से प्राप्त भौगोलिक जानकारी काफी महत्वपूर्ण है और यह अध्ययन उस युग के स्थानों के नामों के विषय में बहुत कुछ जानकारी दे सकता है।

संस्कृत नाटकों में उपलब्ध भौगोलिक स्थितियों का विभाजन वर्णन की सुविधा के लिए निम्न प्रकार से किया जा सकता है -

१. ब्रह्माण्ड, पृथिवी और भारतवर्ष का भौगोलिक विभाजन
२. भारतवर्ष के पर्वत, वन, सरोवर और समुद्र
३. नदियां
४. प्राचीन भारतीय जनपद
५. जातीय राज्य और विदेशी जनपद
६. नगर और ग्राम
७. तीर्थ और ऋषियों के आश्रम

प्रस्तुत भौगोलिक विवेचन में इन सभी स्थानों की वर्तमान सन्दर्भ में पहचान करना उपयोगी होगा। यहां प्रथम अध्याय में ब्रह्माण्ड, पृथिवी और भारतवर्ष के भौगोलिक विभाजन की रूपरेखा दी जा रही है। शेष का विवरण क्रमशः अगले अध्यायों में दिया जाएगा।

### ब्रह्माण्ड और पृथिवी का भौगोलिक विभाजन

प्राचीन पौराणिक परम्पराओं का अनुकरण करते हुए संस्कृत नाटककारों ने ब्रह्माण्ड का भौगोलिक विभाजन इस प्रकार दिया है -

ब्रह्माण्ड में सात समुद्र, दस दिशाएं, सात कुल-पर्वत, पृथिवी आदि १४ लोक, वायुमण्डल और नक्षत्रमण्डल है।<sup>४</sup> इनकी परिगणना इस प्रकार है -

(क) सात समुद्र - राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में सात समुद्र इस प्रकार परिगणित किये हैं-

लावरणो रसमयः सुरोदकः सार्षिणो दधिजलः  
पयःपयः। स्वादुर्वारिरूदविश्व सप्तमस्तान् परीत्य त  
इमे व्यवस्थिताः।।<sup>५</sup>

‘बालरामायण’ नाटक में भी उसने सात समुद्रों का वर्णन किया है - लवण, इक्षुरस, सुरा, सर्पिः, दधि, दुग्ध और जल।<sup>६</sup> समुद्रों की संख्या के विषय में राजशेखर ने अन्य आचार्यों के मत भी प्रस्तुत किये हैं। कुछ आचार्य केवल एक लवण समुद्र मानते हैं,<sup>७</sup> कुछ तीन,<sup>८</sup> कुछ चार,<sup>९</sup> और कुछ सात<sup>१०</sup>। ‘हनूमन्नाटक’ में सात समुद्रों की गणना है।<sup>११</sup> कुलशेखर वर्मन ने पृथिवी को सप्तसमुद्री माना था।

(ख) दस दिशाएँ - दिशाओं की संख्या दस कही गई है। इनमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण ये चार दिशाएँ मुख्य हैं। आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य और ईशान चार दिशाओं के कोण हैं। उपर और नीचे की दो अन्य दिशाएँ हैं।

(ग) सात कुल-पर्वत - ब्रह्माण्ड और पृथिवी के विभाजन में सात कुल-पर्वतों का उल्लेख हुआ है। ये पर्वत पृथिवी को धारण करते हैं। इनके नाम हैं - विन्ध्य, पारियात्र, शक्तिमान्, ऋक्ष, महेन्द्र, सह्य और मलय।<sup>१२</sup> ‘हनूमन्नाटक’ में एक स्थान पर कुलपर्वतों की संख्या आठ भी है। इनको कवि दिगद्वि कहता है। इनके नाम हैं - विजय, कुमुद, नील, निषध, हिमवान्, जयन्त, कालनिषम और वाहीक।

(घ) चौदह लोक - लोकों की संख्या चौदह बताई गई है। सामान्यतः साहित्य में तीन लोक कहे गये हैं - भूलोक, स्वर्गलोक और पाताललोक। विशद विवरण। लोकों का भी मिलता है। इनमें सात लोक - भूः, भुवः, स्व, महः, जनः, जपः और सत्यम् या ब्रह्मलोक एक के उपर क्रमशः दूसरा स्थित है। अन्य सात लोक क्रमशः पृथिवी के नीचे कल्पित किये गये हैं - अतल, वितल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल। पृथिवी के नीचे स्थित लोकों की सामान्यतः पाताल भी कहा गया था। इनको अगम्य समझा जाता था यहाँ छिपने वाले को खोज लेना सम्भव तथा सरल नहीं था। परन्तु वीर पुरुष यहां भी पहुंच जाते थे।

लोकों की अन्य प्रकार से भी कल्पना है- सुरलोक, मनुजलोक और असुरलोक। इनमें सुरलोक ही स्वर्ग, मनुजलोक पृथिवी और असुरलोक पाताल है।

(ङ) वायुमण्डल - पृथिवी के उपर सभी और वायुमण्डल है। वायु के सात स्तर माने गये हैं- आवह, प्रवह, उद्वह, संवह, सुबह, परिवह और परावह। स्वर्ग और पृथिवीलोक

के मध्य ये सातों आवधण रहते हैं। राजशेखर ने इनको वायु के स्कन्ध बताया था। इनकी गणना पृथिवीलोक से या स्वर्गलोक से की जाती है। पृथिवी से लगा वायुमण्डल प्रथम वायुस्कन्ध है तथा स्वर्ग से लगा सप्तम वायुस्कन्ध है। कालिदास ने अन्तरिक्ष में विद्यमान परिवह नामक वायु के मार्ग का वर्णन किया है। यह पृथिवीलोक की ओर से छटा है।

(च) नभोमण्डल - पृथिवी से उपर दृष्टिगोचर होने वाले नक्षत्रों की गणना अनन्त होने से इसकी एक ही नभोमण्डल कह दिया गया है।

(छ) पृथिवीलोक - मानव जाति के निवास को पृथिवी (भूः) कहा गया है। यह चौदह लोकों में से एक है। इस पर १८ द्वीपों की गणना की गई है। पृथिवी का विभाजन सात महाद्वीपों में भी किया गया था।<sup>१३</sup> जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप। कुछ स्थानों पर पृथिवी के मव द्वीपों और कहीं १३ द्वीपों का वर्णन हुआ है वर्तमान समय में इन द्वीपों की पहचान करना या स्थिति के सम्बन्ध में निश्चय रूप से कुछ कहना सम्भव नहीं है।

पुराणों के अनुसार मुख्य लोक तीन ही हैं - स्वर्ग, पृथिवी और पाताल। पृथिवी को मध्यम लोक माना गया है। कालिदास के अनुसार मध्यम लोक पराक्रमी राजाओं की सहायता देवराज इन्द्र को भी अपेक्षित थी।

**सन्दर्भसूची -**

१. अन सप्तम अंक २. हनु १३.१२ ३. हनु १.२६
४. सप्तमाभोनिधयो दशैव च दिशः सप्तैव गोत्राचलाः।  
पृथ्व्यादीनि चतुर्दशैव भुवनान्येकं नभोमण्डलम्।।  
एतावत्परिमाणमात्रकटके ब्रह्माण्डभाण्डोदरे।। हनु १३.१२
५. काव्य ९१.१-२ ६. बारा पृ० ४५
७. काव्य ९१.३ ८. वही ९१.८
९. वही ९१.१७-१८ १०. वही ९१.२०-२१
११. हनु १.३२
१२. विन्ध्यश्च पारियात्रश्च शक्तिमान् ऋक्षपर्वतः।  
महेन्द्रसह्यमलया सप्तैते कुलपर्वताः।। काव्य ९२.१६-१७
१३. काव्य ९०.१३-२४ सप्तद्वीपवती मही- ब्रह्माण्डपुराण ३७०.१३

-गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,  
हरिद्वार

## प्रयागप्रशस्तेः सारः

□ ब्र. कैलाशार्यः...✍

समुद्रगुप्त एकः महान् शासक आसीत्। स विद्वद्भिः सह सत्सङ्गतिं करोति स्म। एवं स राजा शास्त्राणां पोषयिता आसीत्। साहित्यरचनायै विदुषां जनानां काव्याय प्रेरणां करोति स्म। असौ हि अत्यन्तसाहित्यप्रेमी आसीत्। समुद्रगुप्तस्य प्रतिभाशतं वीक्ष्य अस्य पिता 'भवान् आर्यः' इति उक्तवान् अस्य पराक्रमं वीक्ष्य 'त्वं सम्पूर्णा भूमिं पोषय' इति तत्त्वदर्शिना पित्रा प्रोक्तम्।

अस्य मानवेतरकार्याणि समीक्ष्य जना अतिप्रमुदिता भवन्ति स्म। अस्य नृपस्य शौर्यं वीर्यं च दृष्ट्वा शरणागता अपि इमं प्रशंसन्ति स्म। अपकारिशत्रून् अयं पराजितवान्। अयं सर्वाणि कार्याणि हर्षेण स्नेहेन च करोति स्म।

स्वशौर्येण बलेन च स्वबाहुभ्याम् एकाकी एव अच्युतं नागसेनं च नृपम् अविलम्बं समूलं विनष्टवान् पुष्पनामनगरं क्रीडन् एव स्वाधीनं कृत्वा स्वसैन्यबलेन तं गृहीतवान्।

धर्मप्राचीर इव यस्य कीर्तिः चन्द्ररश्मिरिव उज्ज्वला विस्तृता च आसीत्। यस्य विद्वत्ता शास्त्राणां तत्त्वं भेदयित्री आसीत्। तस्य विद्वत्ता शास्त्राणां तत्त्वभेदयित्री आसीत्। वेदोक्तमार्गं चलनं तत्प्रतिपादनं च तस्य ध्येयम् आसीत्। मतिवैभवकारणात् तस्य कविता अतिगुणा भवति स्म। तस्मिन् समुद्रगुप्ते तु एकसार्धमेव गुणप्रतिभे वसतः स्म।

स युद्धशतं कृतवान्। तत्र पराक्रमेण युद्धं कुर्वाणः तस्य शरीरे सहैव बहवः शस्त्राघाता अभवन्, ते आघाताः तस्य गौरवं वर्धयन्ति स्म। स दक्षिणपथस्य राज्ञां ग्रहणं कृत्वा स्वानुग्रहेण तान् विमुक्तवान्। आर्यावर्तस्य ये नृपा आसन्, तान् उन्मूल्य स्वमहाप्रभावं वर्धितवान्। सम्पूर्णाटवीप्रदेशस्य नृपाणां परिचारकत्वेन स्थापितवान्।

पूर्वपश्चिमायां दिशि भारतस्य ये नृपा आसन्, तान् सर्वान् स्ववशे कृत्वा प्रसह्य स्वाज्ञापालनाय कथितवान्।

कुषाणवंशस्य शकमुरुण्ड श्रीलंकादिद्वीपानां नृपा अस्य पादयोः आत्मसमर्पणं कृत्वा स्वकन्यानाम् उपहारं समर्प्य स्वशासितभूमौ अस्यैव शासनम् कारितवन्तः। कुत्रापि अस्य रिपुः न आसीत्।

असौ नृपः शतसत्कार्यैः विभूषितः, स्वबहुसंख्यकगुणैः अन्यनृपाणां कीर्तिं विनाश्य साधुजनाय उदयः तथा असाधुजनाय अन्तकरणहेतुः आसीत्। सनम्रं नमनं कृत्वैव यस्य हृदयो मृदुलो भवति स्म। यः सर्वदा अनुकम्पां करोति स्म। शतसहस्रसङ्ख्यकानां गवां दानं यः कृतवान्।

कृपणदीनानाथव्यग्रजनानां कष्टनिवारणाय सदा प्रयासं करोति स्म। जनकल्याणाय रक्तेषु जनेषु अनुकम्पां करोति स्म। कुबेरवरुणेन्द्रयमसदृशो भूत्वा स्वबाहुबलेन नृपान् विजित्य स्वाधीनं कृत्वा अनुकम्पया नृपसम्पत्तिं प्रतिलब्धुं प्रयतते स्म।

अयं तीक्ष्णविदग्धमतिः आसीत्। विद्यया वाद्येन कण्ठसंगीतेन च बृहस्पतितुम्बुरुनरदादिप्राज्ञान् स्वकुशलताया लज्जां कारयति स्म। विदुषां काव्यं समीक्ष्य जीवनोपयोगि-धनं ददाति स्म। अनेककाव्यरचनावशादेव असौ 'कविराजः' इत्युपाधिना अलङ्कृत आसीत्। चिरकालस्मरणाय यस्य बहूनि संस्तुत्यानि कर्माणि आसन्।

अयं समुद्रगुप्तः लौकिककार्यसम्पादनवशादेव मानवः, अन्यथा भूलोकवासी देवोऽसौ।

प्रयागप्रशस्तौ अस्य वंशविषयेऽपि विवेच्यते यत् समुद्रगुप्तः महाराजश्रीगुप्तस्य पौत्रः, श्रीघटोत्कचस्य पौत्रः, महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तस्य पुत्रः, लिच्छवीवंश कन्यायां महादेव्यां कुमारदेव्यां समुत्पन्न आसीत्।

प्रशस्त्यामुच्यते यत् समुद्रगुप्तस्य समस्तभूतेः विजयेन उत्पन्नाभ्युदयेन समस्त संसारो व्याप्तो विद्यते। इतः भूमेः इन्द्रभवनं गच्छतीं सुन्दरसुखमयगतिकां कीर्तिं

दर्शयन् भूमिबाहुरिव अयं स्तम्भ ऊर्ध्वो विद्यते ।

यस्य नृपस्य यशः दानबाहुविक्रमप्रज्ञाशास्त्रा-  
भ्युदयेन उच्चोच्चमुन्नतं च सत् अनेकविधैः मार्गैः त्रैलोक्यं  
शिवजटान्तः गुहाबन्धाद् मुक्तगंगाजलमिव पुनाति ।

एतत् प्रयागप्रशस्तिरूपककाव्यम् अस्य नृपस्य  
चरणदासेन समीपस्थेन अनुग्रहविकसितमतिना  
महादण्डनामकध्रुवभूतिपुत्रेण सन्धिविग्राहकेण कुमारामात्येन

हरिषेन विरचितम् । एतत् काव्यं समस्तप्राणिभ्यो हितकरं  
सुखकरं च स्याद् । परमभट्टारकसमुद्रगुप्तचरणयोः  
चिन्तकेन महादण्डनायकेन अस्य स्तम्भस्य स्थापना कृता ।  
अत्र अस्यां प्रशस्त्यां यदपि ऐतिहासिकं तथ्यं तत्सर्वमपि  
प्रकाशयितुं प्रयासो विहितः । मन्ये अनेन प्रयासेन सुधियः  
सन्तुष्टिं गमिष्यन्ति ।

-गुरुकुलपौन्धा,  
देहरादूनम्

## वैदिक चिन्तन शिविर में लिए गये निर्णयों की रूपरेखा

आर्य जगत् के सभी विद्वानों, उपदेशकों, प्रचारकों व कार्यकर्ताओं व सदस्यों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि दिनांक १८-१९ जून २०१६ को दो दिवसीय वैदिक चिन्तन शिविर गुरुकुल गौतमनगर में आदरणीय स्वामी प्रणवानन्द जी के मार्गदर्शन में तथा स्वामी आर्यवेश जी की अध्यक्षता में तथा स्वामी धर्मेश्वरानन्द जी के सानिध्य में आयोजित किया गया था । इस शिविर में आर्यसमाज के मूर्धन्य विद्वान डॉ. महावीर मीमांसक, डॉ. ज्वलन्त कुमार जी शास्त्री, पं. वेद प्रकाश जी श्रोत्रिय, पं. सोमदेव जी शास्त्री (मुम्बई), डॉ. धर्मेन्द्र जी, ठाकुर विक्रम सिंह जी, डॉ. वाचस्पति कुलवन्त जी, श्री विद्यामित्र जी टुकराल, श्री रविदेव गुप्ता जी तथा कैप्टेन रुद्रसेन जी, पं. धर्मवीर जी शास्त्री, श्री वीरपाल विद्यालंकार, डॉ. रघुवीर वेदालंकार, डॉ. महेश विद्यालंकार, आचार्य यज्ञवीर, आचार्य हरिदत्त उपाध्याय, श्री सुबोध कुमार, आचार्य हनुमत् प्रसाद, आचार्य चन्द्रशेखर शर्मा, ओम्प्रकाश यजुर्वेदी, श्रीमती गीता झा, आचार्या कल्पना, आचार्य श्यामलाल, श्री सत्यवीर आर्य, श्री वासुदेव व्रती, श्री अजीत कुमार, श्री रवीन्द्र कुमार आदि समाजसेवी-युवा विद्वान एवं विदुषियों ने भाग लिया ।

इस चिन्तन शिविर का मुख्य उद्देश्य यह था कि आर्यसमाज की वैदिक विचारा धारा को कैसे जन-जन तक पहुँचाया जाये? प्रचार का क्या तरीका अपनाया जाये? युवाओं को कैसे समाज के साथ जोड़ा जाये? उपदेशक, पुरोहित व प्रचारक कैसे तैयार किये जायें। आर्यसमाज मन्दिरों को कैसे जीवन्त बनाया जाये जिससे वहाँ २४ घंटे

सामाजिक व धार्मिक गतिविधियाँ चलती रहें।

इन विषयों पर विचार करते हुये यह निर्णय लिया गया है कि वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार की दिशा व दशा में परिवर्तन लाने हेतु धर्म परिषद् का गठन किया जाये। इस परिषद् का कार्य होगा कि व्यक्तिगत रूप में अलग-अलग उपदेशकों, प्रचारकों व विद्वानों द्वारा किये जा रहे प्रचार कार्यों को संगठित रूप में अल्पकालीन व दीर्घकालीन कार्ययोजना तैयार कर किया जावे तथा विभिन्न भाषाओं में (देशी-विदेशी) प्रचारक तथा साहित्य भी तैयार किया जावे। यह प्रचार कार्य अधिक से अधिक युवाओं, बुद्धिजीवियों तथा आम जनता को अपने साथ जोड़ने के उद्देश्य से किया जायेगा। प्रचार कार्य में नयी तकनीक टी. वी., रेडियो, सोशल मीडिया, कम्प्यूटर आदि का भरपूर उपयोग किया जायेगा तथा देश-काल व परिस्थिति के अनुसार प्रचार की पद्धति निर्धारित होगी।

इसी प्रकार गुरुकुलों, आर्य स्कूलों व डी.ए.वी. शिक्षा संस्थानों की पाठविधियों में समयानुकूल परिवर्तन-परिवर्धन करने, विषयानुकूल पुस्तकों का लेखन करने, आर्यसमाज से सम्बन्धित विषयों पर शोध कार्य करने, भारतीय इतिहास का पुनर्लेखन करने तथा विभिन्न क्षेत्रों विशेषकर उत्तरपूर्वी व जम्मू-काश्मीर आदि प्रदेशों की विभिन्न भाषाओं बोलियों व संस्कृति का भारतीय संस्कृति के साथ सम्बन्ध स्थापित करने हेतु विद्वत् परिषद् के गठन का निर्णय लिया गया।

आजकल विभिन्न समाचार पत्रों व टी.वी. चैनलों पर

आर्यसमाज के सिद्धान्तों के विरुद्ध अनेक टिप्पणियाँ व समाचार प्रकाशित होते रहते हैं। जिसका प्रतिवाद आर्यसमाज के विद्वानों द्वारा नहीं किया जाता है। वस्तुतः मीडिया से हम लोग एक दम दूर हो गए हैं।

इसी प्रकार बहुत सी घटनायें होती हैं। सभी राजनैतिक दल व धार्मिक संगठन अपनी प्रतिक्रियायें देते हैं तथा आन्दोलन करते हैं, परन्तु आर्यसमाज की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है। इन कार्यों को करने के लिये जन-जागरण परिषद् के गठन का निर्णय लिया गया।

### समन्वय समिति

देश की युवा शक्ति को संगठित करने, उन्हें अपने देश के प्रति अपने कर्तव्यों को बोध कराने, आपद्ग्रस्त लोगों की सहायता करने, सामाजिक बुराईयों को दूर करने, नशा व ड्रग्स के विरुद्ध अभियान चलाने, चरित्र निर्माण करने, साम्प्रदायिक सौहार्द स्थापित करने, स्वच्छता का अभियान चलाने, छोटे बच्चों-बच्चियों को शिक्षा हेतु स्कूल भेजने के लिये प्रेरित करने, देश भक्त महापुरुषों की जीवनगाथा का प्रचार-प्रसार करने हेतु समन्वय समिति नाम से एक संगठन स्थापित करने का निश्चय किया गया है।

इसके अन्तर्गत हर २००० की आबादी पर कम से कम १० नवयुवकों का एक संगठन बनाया जायेगा। ये १० नवयुवक सुबह या शाम १ घंटे के लिये किसी सार्वजनिक स्थान पर तिरंगे झंडे के साथ एकत्रित होकर हल्का व्यायाम, आसन-प्राणायाम तथा कुछ सामूहिक खेल आदि करेंगे। इस कार्यक्रम की शुरुआत 'जन-गण-मन' राष्ट्रगान से होगी तथा समापन 'वन्देमातरम्' राष्ट्रीय गीत से होगा। इस दौरान देशभक्ति के गीत गाये जा सकेंगे तथा विभिन्न सामयिक विषयों पर चर्चा होगी तथा सामाजिक समस्याओं, देशभक्त महापुरुषों के बारे में बताया जायेगा। सप्ताह में एक या दो दिन अपने-अपने क्षेत्र में प्रभात फेरी निकाली जायेगी तथा कभी-कभी स्वच्छता का अभियान चलाया जायेगा। इस प्रकार हर गांव व शहर में २००० की आबादी के मोहल्लों में कम से कम १० नवयुवकों का एक संगठन पूरे देश में तैयार किया जायेगा। इस कार्य के लिये एक

संयोजक तथा एक सहसंयोजक होगा। संयोजक का कार्य दश नवयुवकों की पहचान करना तथा ऊपर बताये तरीके से प्रशिक्षण देना होगा। सह संयोजक कार्य संयोजक का अनुपस्थिति में गतिविधियों को संचालित करना तथा अन्य समय में संयोजक को सहयोग करना होगा।

इस प्रकार के चयनित युवकों में से उत्साही एवं प्रबुद्ध युवकों को बौद्धिक शिविरों में प्रशिक्षण के लिये भेजा जायेगा तथा उनका उपयोग संगठन के प्रचार कार्य के लिये किया जायेगा। संयोजक तथा सहसंयोजक का चयन राष्ट्रीय अथवा प्रान्तीय समिति द्वारा किया जायेगा।

इस संगठन में वे सभी युवक भाग ले सकेंगे जो देश व समाज की उन्नति के लिये कुछ सेवा कार्य करना चाहते हैं तथा प्रतिदिन एक घंटे का समय दान करने को तैयार हों।

युवकों के साथ-साथ छोटे बच्चों को भी एकत्रित किया जा सकेगा तथा उन्हें मनोरंजक खेल तथा सामान्य शिष्टाचार की बातें भी सिखायी जायेंगी, साथ ही देश भक्ति के गीत भी सिखायें जायेंगे।

इसी प्रकार का कार्यक्रम बच्चियों के लिये भी किया जा सकता है, बशर्ते उनके लिये कोई प्रशिक्षित महिलाएँ उपलब्ध हों। सार्वजनिक पार्क उपलब्ध न हों तो किसी पूर्व निर्धारित स्थान पर इस प्रकार का कार्यक्रम किया जा सकता है।

यह प्रयास केवल आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से किया गया है, किसी का विरोध करने के लिये नहीं। वर्तमान में अनेक सार्वदेशिक सभायें तथा प्रतिनिधि सभायें कार्य कर रही हैं तथा आर्यसमाज विभिन्न गुप्तों में बंटा हुआ है। हम किसी गुप्त के साथ न बंधकर सभी सभाओं को उनके रचनात्मक कार्यों में सहयोग देना चाहते हैं तथा आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार की कार्ययोजना में उनका सहयोग लेना चाहते हैं।

इन दो दिनों के चिन्तन शिविर का संचालन डॉ. सोमदेव शास्त्री (मुम्बई) एवं डॉ. धर्मेन्द्र कुमार द्वारा किया गया।

-समन्वय समिति

गुरुकुल गौतमनगर नई दिल्ली-११००४९